R.N.I. No. 2321/57

जुलाई 2016

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

अंक 6

तपोभूमि

मासिक

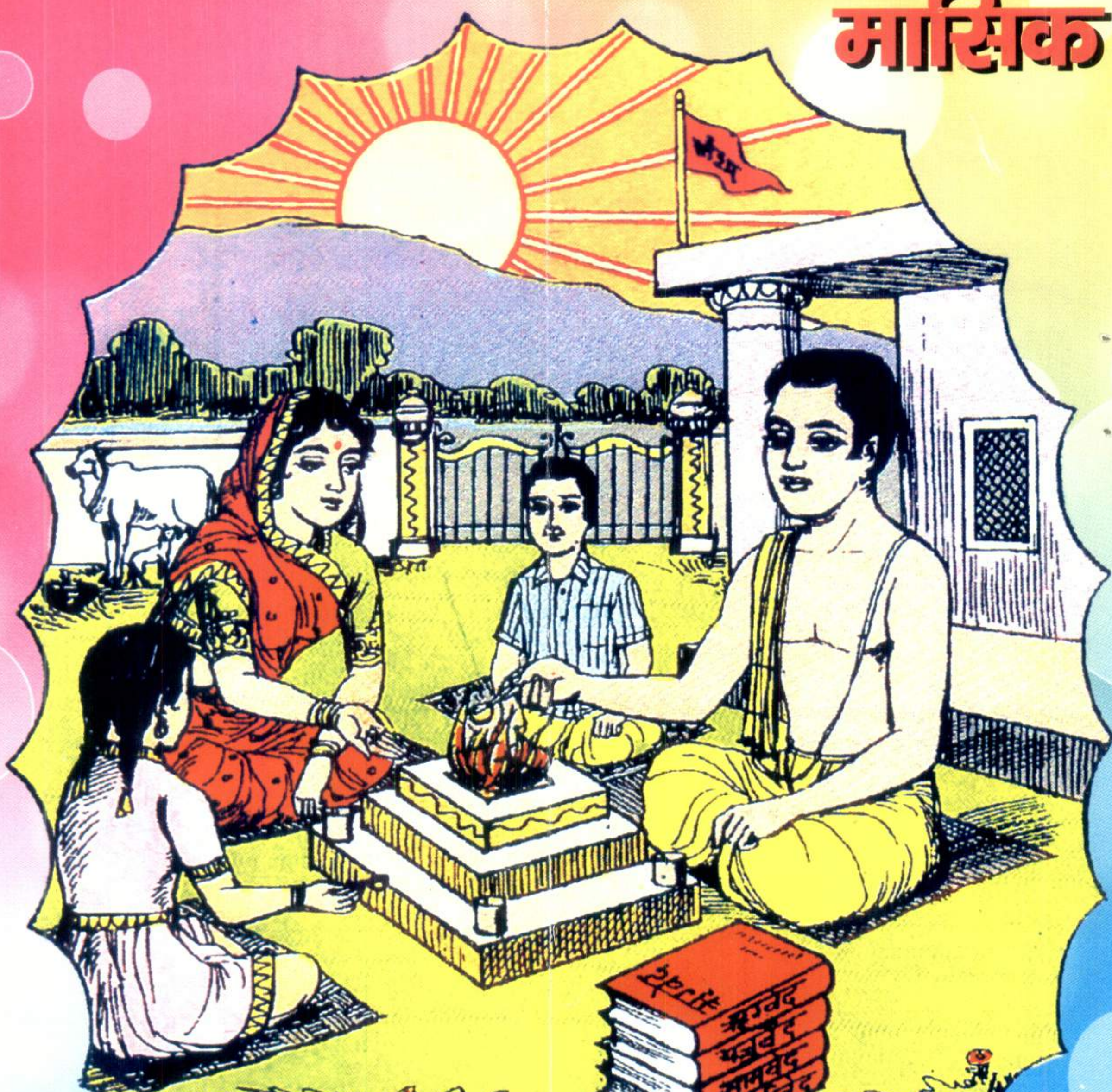

21 जून

विश्व योग दिवस भारतीय गौरव का प्रतीक

सृष्टि के आदि में परमपिता परमात्मा ने अपनी असीम कृपा से पवित्र वेदज्ञान का प्रकाश संसार के कल्याणार्थ किया। करोड़ों वर्ष तक हम उसका लाभ उठाकर संसार में कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते रहे। उत्थान–पतन संसार का नियम है हममें भी आलस्य प्रमाद ने अपना प्रभाव दिखाया और परम कल्याणकारी वेद विद्या को धीरे–धीरे सर्वथा भुला बैठे उसका दुष्परिणाम सारा मानव समाज घोर अव्यवस्था के रूप में देख रहा है जिस नीति पर चलकर हम आपसी कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते थे वह नीति सर्वथा परोपकार की नीति थी क्योंकि हम सब ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार अपने जीवन का परम उद्देश्य ही परोपकार बताकर चलते थे। यही हमारी संस्कृति का मूल था इसी संस्कृति के विषय में वेद माता ने हमें निर्देश दिया **किसा संस्कृति प्रथमा विश्ववारा**। यह वैदिक संस्कृति या जिसे परोपकार के आधार पर खड़ी संस्कृति कहें यह सारे विश्व के लिए वरणीय है, स्वीकार करने के योग्य है यह प्रथमा है अर्थात् सबका विस्तार करने वाली है। इसे सारे संसार में कोई भी स्वीकार कर सकता है। इसमें कहीं भी संकीर्णता नहीं है। दुर्भाग्यवश कुछ स्वार्थी लोगों ने अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए वेद के पठन–पाठन के अधिकार को अपने तक सीमित कर लिया उनके इस कुचक्र का शिकार धीरे–धीरे सारा समाज हो गया। वेद के लुप्त होने से वैदिक संस्कृति का लोप हो गया। परोपकार की शिक्षा देने वाला ज्ञान नहीं रहा, तो स्वार्थ का सर्वत्र बोल वाला हो गया पूरे संसार की तो कथा ही क्या? अपने देश में ज्ञानालोक के अभाव में अज्ञानान्धकार छा गया जिसके परिणामस्वरूप अनेकानेक मत–मतान्तर हो गये। सारा देश परतन्त्र हो गया। स्वतंत्रतापूर्वक विचरने वाली आर्य जाति परतन्त्रता की बेड़ियाँ ये जकड़ गयी। स्वार्थ साधना में तत्पर समर्थ राज–महाराजे एक दूसरे को नीचा दिखाने में अपना सर्वस्व खो बैठे। एक वर्ग दूसरे वर्ग पर घोर अत्याचार करने लगा, ऊँच–नीच जाति–पाँति की जंजीरों में सारा समाज जकड़ गया।

इस विशेष संकटावस्था में परमात्मा ने महर्षि दयानन्द जैसे दिव्य योगी को भेजा उन्होंने पुनः वेद विद्या की पुनः स्थापना के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया। जगह–जगह गुरूकुल खोले गये जिसमें पढ़ने वाले छात्रों ने घूम–घूम वैदिक संस्कृति की महत्ता को स्थापित करने का भरपूर प्रयास किया, लेकिन स्वार्थप्रिय लोगों ने संकीर्ण मानसिकता के चलते यथायोग्य सफलता प्राप्त नहीं होने दी। सत्तासीन लोग ही व्यवस्थायें देते हैं। आधुनिक शिक्षा में दीक्षित इन लोगों ने वैदिक सर्व कल्याणमयी संस्कृति को भी साम्प्रदायिकता के कीचड़ में ढक दिया। सारा देश सच्ची संस्कृति के अभाव में नैतिकता के घोर पतन की ओर चला गया। चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, विश्वासघात, देशद्रोह जैसी प्रवृत्तियाँ आज खुलकर फल–फूल गयी हैं जिसके कारण सारा समाज संत्रस्त है। भोगवाद की आँधी ने हमारे सम्पूर्ण विश्व के स्वास्थ्य को तहस नहस कर दिया है। आज हर आदमी रोगी है कितने प्रकार के रोग हैं इनकी कोई गिनती नहीं है।

–शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–62 | संवत्सर 2073 | जुलाई 2016 | अंक 6

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

जुलाई 2016

सृष्टि संवत्
1960853117

दयानन्दाब्द: 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
पुराणों को किसने बनाया	–डॉ0 श्रीराम आर्य	5–8
त्रिगुण सूत्र	–टी.एल.वासवानी	9–13
क्रोधादि कषायों को वश में रखना	–बाबू सूरजभान वकील	14–17
ब्रह्मचर्य–विज्ञान	–जगननारायण देव	18–21
वेद जनसामान्य से दूर क्यों?	–कृपालसिंह वर्मा	22–25
सफलता का दूसरा साधन	–केदारनाथ गुप्त	26–29
दो आँसू	–कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर	30
ऋषिवर देव दयानन्द की राष्ट्र को देन	–खुशहालचन्द्र आर्य	31–33

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/–　　पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

एक विलक्षण बैल

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता।
यो शिविजिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्।। –अथर्व0 4.11.5

शब्दार्थ:–

(यस्य) जिसका (न ईशे) न स्वामी है (यज्ञपति:) यजमान, (न यज्ञ:) न यज्ञ, (न अस्य दाता ईशे) न इसका दाता स्वामी है, (न प्रतिग्रहीता) न दान लेनेवाला। (य:) जो (विश्वजिद्) विश्वजेता, (विश्वभृद्) विश्वभर्ता और (विश्वकर्मा) विश्वरचयिता है, उस (घर्मं) तेजस्वी अनांकन् के विषय में (न: ब्रूत) हमें बताओ (यतम:) जो (चतुष्पात्) चार पादों वाला है।

भावार्थ:–

सुनो, वेद एक विलक्षण बैल का परिचय दे रहा है। सामान्य बैल का कोई स्वामी होता है। जिस कृषिरूप यज्ञ के लिए या रथचालनरूप रूप यज्ञ के लिए उस बैल का प्रयोग हो रहा होता है वह यज्ञ उस बैल का स्वामी होता है अथवा उस यज्ञ के यजमान कृषक और रथचालक उस बैल के स्वामी होते हैं। यदि उस बैल का किसी को दान किया जाना होता है, तो जब तक वह दाता के पास रहता है तब तक दाता उसका स्वामी होता है और जब वह प्रतिग्रहीता के पास पहुँच जाता है तब प्रतिग्रहीता उसका स्वामी हो जाता है। किन्तु मन्त्रोक्त बैल तो अद्भुत है, न यजमान उसका स्वामी है, न यज्ञ, न दाता स्वामी है, न प्रतिग्रहीता। यह अपना स्वामी स्वयं ही है। पहेली बूझने के लिए संकेतरूप में पहेली के नायक का कुछ अता–पता दिया जाता है। अता–पता भी सुन लो, वह बैल विश्वविजयी है, विश्वभर्ता है, विश्वकर्मा है, चतुष्पाद् है और दीप्तिमान् (घर्म) है। अब बतलाओ, वह बैल कौन है।

बैल का अनांकन् इस कारण कहते हैं कि वह शकट का वहन करता है–अन: शकटं वहतीति अनांकन्। पहेली का अनांकन् विश्वजित्, विश्वभूत और विश्वकर्मा है, अत: वह साधारण बैल नहीं हो सकता। परब्रह्म ही ह अनांकन् है, अत: वह ब्रह्माण्डरूप शकट का वहन करता है, वह विश्वभर में सबसे अधिक शक्तिशाली होने के कारण विश्वविजयी है और सारे संसार का भरणपोषणकर्ता होने के कारण विश्वविजयी है और सम्पूर्ण विश्व का रचयिता होने के कारण विश्वकर्मा भी है। अग्नि, विद्युत्, सूर्य, नक्षत्र आदि सब दीप्तिमानों से अधिक दीप्तिमान् होने से 'घर्म' है।

वह परब्रह्मरूपअनांकन चतुष्पाद भी है। छान्दोग्य उपनिषद में सत्यकाम जाबाल को चतुष्पाद्

–शेष पृष्ठ संख्या 17 पर

गतांक से आगे–

पुराणों को किसने बनाया?

लेखकः डॉ० श्रीराम आर्य

मर्दों को औरत बनाने के शाप की कथा

अर्थ– एक समय महान् ऋषिगण अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कामदेव जी को देखने के लिए आये॥ 29॥

उस समय पार्वती देवी नंगी होकर शिवजी की गोद में बैठी रमण कर रही थीं। वे उन ऋषियों को आया हुआ देखकर लज्जित होकर जल्दी से पति की गोद से उठकर झटपट वस्त्र पहिनने लगीं॥ 30॥

ऋषि लोग भी उन शिव–पार्वती को प्रसंग करते हुए देखकर वहां से नर नारायण के आश्रम को चले गये॥ 31॥

तब शिवजी अपनी प्यारी के हित की कामना करके उससे बोले कि जो कोई भी इस स्थान में प्रवेश करेगा, वह तुरन्त स्त्री बन जायेगा॥ 32॥

तत ऊर्ध्वं वनं तद् वै पुरुषा वर्जयति हि।
साचानुचर संयुक्ता विवचार वनाद् वनम्॥ 33॥
अथ तमाश्रमाभ्याशे चरंतीं प्रमदोत्तमाम्।
स्त्रीभिः परिवृत्तां वीक्ष्य चकमे भगवान् बुध॥ 34॥
सापि तं चकमे सुभ्रूः सोम राज सुतं पतिम्।
स तस्यां जनया मास पुरूर वसमात्मजम्॥ 35॥
एवं स्त्रीत्व मनु प्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः।
सस्मार स्वकुलाचार्यं वशिष्ठमिति शुश्रुम॥ 36॥
स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भ्रश पीड़ितः।
सुद्युम्नस्याशयन् पुसंत्व मुपाधावत शंकरम्॥ 37॥
तुष्ट स्तस्मै स भगवान् ऋषये प्रियमावहन्।
स्वांच वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते॥ 38॥
मासंपुमान् स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः॥ 39॥

–(भागवत पुराण स्कन्द 9, अध्याय 1)

अर्थ– अब पूर्वोक्त सुद्युम्न चरित्र को कहते हैं। वह प्रद्युम्न स्त्री बनकर अपने अनुचरों के साथ एक वन से दूसरे वन में विचरने लगा॥ 33॥

उसे अपने आश्रम के पास स्त्रियों के साथ घूमने एवं सब स्त्रियों से सुन्दर देखकर बुध उस पर

आसक्त हो गया॥ 34॥

चन्द्रमा का बेटा राजपुत्र बुद्ध को देखकर वह स्त्री भी उसे पति रूप में चाहने लगी। बुद्ध ने उससे पुरुरवा नाम का लड़का पैदा किया॥ 35॥

उस स्त्रीत्व अवस्था में सुद्युम्न ने अपने आचार्य वशिष्ठ का स्मरण किया, यह हमने सुना है॥ 36॥ वशिष्ठ जी उसकी दशा देखकर दुखी हुए और सुद्युम्न को पुरूष करने की इच्छा से महादेव जी के नाम का जप करने लगे॥ 38॥

महादेव ने वशिष्ठ से प्रसन्न होकर अपनी वाणी को सच रखने के लिए कहा कि तुम्हारा शिष्य यह राजा एक महीना पुरूष रहेगा और एक महीना स्त्री रहा करेगा॥ 39॥

समीक्षा– शिवजी का खुले मैदान में उमा को गोदी में नंगा बैठाकर उसके साथ प्रसंग करना, ऋषियों का आना, शिवजी का मर्दों को औरत होने का शाप देना, सुद्युम्न का स्त्री हो जाना, बुद्ध से शादी करके लड़का पैदा करना, एक-एक माह क्रम से आजीवन स्त्री व पुरूष बनते रहना यह सब शेखचिल्ली की गप्पें नहीं हैं तो क्या हैं? या व्यास जी कोई गल्प लेखक अर्थात् गप्पी उपन्यासकार थे, जो ऐसी मनोरंजक और बेसिर पैर की गप्पें लिखा करते थे।

योगीराज महानवेदज्ञ महर्षि व्यासजी पर ऐसी बेतुकी गप्पों से भरी हुई पुस्तक भागवत को बनाने की बात कहना उनके ऋषित्व एवं महान व्यक्तित्व पर भयानक लांछन लगाना होगा।

ऐसी दिलचस्प कहानियाँ तो किसी भ्रष्ट उपन्यासकार की रचना ही हो सकती हैं। स्पष्ट है कि भागवत आदि पुराण व्यासजी कृत नहीं हैं।

हनुमान जी की विचित्र पैदायश

एकस्मिन समये शम्भुरद्भुतोति करः प्रभुः।
ददर्श मोहिनी रूपं विष्णोस्सहिवसद्गुणः॥ 3॥
चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामवाणहतोयथा।
स्वम्वीर्यम्पातयामास राम कार्यार्थमीश्वरः॥ 4॥
तद्वीर्य स्थाययामासुः पत्रे सप्तर्षयश्चते।
प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरत॥ 5॥
तैर्गौतम सुतायां तद्वीर्य शंभोर्महर्षिभिः।
कर्ण द्वारा तथांजन्यां रामकार्यार्थमाहितम्॥ 6॥
ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक्।
शम्भुर्जज्ञे कपि तनुर्महाबल पराक्रमः॥ 7॥

–(शिव पुराण, शतरुद्र संहिता, अध्याय 20)

अर्थ– एक समय लीला करने वाले शिव ने विष्णु का मोहिनी स्वरूप देखा॥ 3॥
तो कामबाण से पीड़ित हो शिवजी ने व्याकुल हो अपना वीर्य गिराया॥ 4॥

तब आदर से राम के कार्य के लिए मन से शिवजी द्वारा प्रेरणा किये हुए उन सप्त ऋषियों ने उस वीर्य को पत्ते पर स्थापित किया॥ 5॥

उन ऋषियों ने वह शिव वीर्य गौतम पुत्री अंजनी के अन्दर कान के द्वारा प्रविष्ट किया॥ 6॥

उस समय वीर्य से महाबली तथा पराक्रमी वानर शरीर वाले 'हनुमान' नामक शिवजी उत्पन्न हुए॥ 7॥

समीक्षा– विष्णुजी स्त्री बन गये। शिवजी उसे देखते ही कामन्ध हो गये व उनका शुक्रपात हो गया। सप्तर्षि भी वहां पत्तों का कटोरा लिए तैयार ही बैठे थे, उन्होंने झटपट उस पतित वीर्य को कटोरा लगाकर भर लिया।

वे उसे लेकर चले और गौतम की पुत्री अर्थात् पवन की पत्नी अंजनी के कान में घुसेड़ आये। जैसे कि वह इस शुभ काम के लिए पहले से ही तैयार बैठी थी। कान में होकर वह वीर्य कहां गया? यह स्पष्ट नहीं किया।

यदि वह वीर्य गर्भाशय में चला गया तो प्राकृतिक मार्ग से अंजनी ने हनुमान को 9 माह बाद जन्म दिया होगा और यदि वह वीर्य कान में ही भरा रहा होगा तो कान में कीड़े पड़कर हनुमान जी कैसे पैदा हुए होंगे?

पुराणों की गल्पें भी विलक्षण होती हैं। कान में वीर्य भर दे और लड़का पैदा हो जाता है।

पौराणिक पण्डितों को चाहिए कि अपने इस चमत्कार को वे अपनी किसी प्रयोगशाला में प्रत्यक्ष करके दिखाएं।

भागवत स्कन्द 8, अध्याय 12 में लिखा है कि उसी शिव के शुक्रपात से पृथ्वी पर सोने–चांदी की खानें बन गयी थीं। पर शिव पुराण ने उसी वीर्य से हनुमान जी बना दिये।

शिवजी का वीर्य भी बड़ा चमत्कारी होता था। देखिए एक बार वह ऐसे ही हिमालय पहाड़ पर पतित हो गया था, तो उसे अग्नि ऋषि, कबूतर बनकर निगल गया। फिर उसने उसे ऋषि पत्नियों को बांट दिया। वे गर्भवती हो गयीं। उन्होंने हिमालय पर गर्भपात कर दिया तो उसकी गर्मी से हिमालय जलने लगा, उसने ऐसा देखकर उसे गंगा की शीतल धारा में बहा दिया, तो गंगाजी भी उसे सह न सकीं।

परिणाम स्वरूप उसकी धारा भी उस वीर्य के प्रभाव से बन्द हो गयी, तो उसने उसे सरकण्डों में फेंक दिया, जहां उस वीर्य के प्रभाव से तत्काल छः मुख वाला बालक पैदा हो गया था, जिसका नाम स्वामी **'कार्तिकेय'** था। यह भी शिवजी का बहादुर बेटा माना जाता है।

नोट– इसकी पूरी कथा के लिए देखो पुस्तक "शिवजी के चार विलक्षण बेटे"। यह कथा शिवपुराण में भी दी हुई है। शिवजी की अपनी दोनों पत्नियों सती व पार्वती से कभी कोई औलाद पैदा न हो सकी थीं। पर पृथ्वी पर शुक्रपात हो जाने से लड़के अवश्य पैदा हो गये थे।

पुराणों की इन बेतुकी कथाओं से प्रकट है कि इनके बनाने वाले गप्पी लोग ही रहे होंगे। वेदव्यास जी जैसे महान् ऋषि की लेखनी से ऐसी गल्पें कदापि सम्भव नहीं हो सकती।

ब्रह्मा जी का पुत्री–गमन

सावित्री लोक सृष्टियर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः।
ततः सजपतस्तस्यभित्वा देहम कल्मषम्॥ 30॥

स्त्रीरूपमर्द्धर्म करोदर्द्धम पुरुष रूपवत्।
शतरूपाचसा ख्याता सावित्री च निगद्यते।। 31।।
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप।
ततः स्वदेह सम्भूतामात्मजामित्यकल्पयत्।। 32।।
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामबाणार्दितो विभुः।
अहो रूपमहो रूपमिति चाह प्रजापतिः।। 33।।
ततो वशिष्ठप्रमुखाः भगिनी मिति चुक्रुशुः।
ब्रह्मा च किंचिद्दृशे तम्मुखालोकनाद्वत।। 34।।
अहोरूप महोरूप मिति प्राहः प्रजापतिः।
ततः प्रमाण नम्रान्तां पुनरेवाभ्यलोकयत्।। 35।।
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्ववर्णिनी।
पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया।। 36।।
आविर्भूतं ततो वक्त्र दक्षिणं पाण्डु गण्डवतैः।
विस्मस्फुरदोष्ठंच पाश्चात्य मुदगात्ततः।। 37।।
चतुर्थम भवत्पश्चाद्वामं काम शरातुरम्।
ततोऽन्यदूभवत्तस्य कामातुरतया ह तथा।। 38।।
उत्पतन्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूलात्।
सृष्टयर्थं यतकृतं तेन तपः परम दारुणाम्।। 39।।
तत्सर्वनाश मगमत् स्वसुतोपगमेच्छया।
तेनोर्ध्वं वक्त्रभवत्पचमं तस्यधीमतः।
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्रंचावृणोत्प्रभुः।। 40।।
ततस्तान्ब्रवीत ब्रह्मा पुत्रानात्म समुद्भवान्।
प्रजाः सृजध्वमभितः स देवासुर मानुषीः।। 41।।
एवमुक्तास्ततः सर्वे स जुर्विविधाः प्रजाः।
गतेषु तेषु सृष्टयर्थं प्रणामावनतामिमाम्।। 42।।
सम्बभूव तया सार्द्धं मति कामातुरो विभुः।
सलज्जाँचकमे देवः कमलोदर मन्दिरे।। 43।।
यावदब्दशतं दिव्य यथान्यः प्राकृतोजनः।
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः।। 44।।

–(मत्स्य पुराण, अध्याय 3)

–(शेष अगले अंक में)

त्रिगुण सूत्र

लेखकः–टी. एल. वासवानी

एक सिन्धी किम्वदन्ती है:–'सच्ची महान् आत्मायें छिपे हुये मनुष्यों में पाई जाती है' परन्तु उनके अन्दर की सच्चाई बहुत देर छिपी नहीं रहती। यह शनैः 2 दूसरों पर प्रकट होती है। गेटे ने कहा है–

'वस्तुतः महान्, सच्चे, उच्च, पुरुष अपना मार्ग मौन से ही निकाल लेते हैं।

ऋषि दयानन्द के जीवन और सन्देश की सच्चाई उसके देशवासियों पर प्रकट होती जाती है। मेरा विश्वास है कि आगामी दिनों में यह और भी अधिक प्रकट होगी। मुझे हर्ष हुआ कि अभी हाल में लन्दन में हुई धार्मिक कान्फ्रेंस के समय एक ईसाई शिष्य ने उच्च प्रशंसा के भाव दयानन्द के विषय में प्रकट किये थे। गत वर्ष दिवाली के अवसर पर लन्दन की एक सभा में ऋषि के स्मृति में प्रशंसा पूर्ण उद्गार निकले थे। कुछ दिन हुये कि जंजीवार (पूर्व अफ्रीका) से आये एक व्यक्ति ने मुझे बतलाया कि वहां के स्त्री पुरुषों की बड़ी संख्या पर दयानन्द का गहरा प्रभाव है। मैं उसकी जीवनी में एक त्रिगुण सूत्र (तीन तार का धागा) फैला हुआ देखता हूं वह 'ऋषि' 'योगी' और 'कर्मवीर' है। मैं जब उसके चित्र को देखता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह मानों अपने देश और प्राचीन इतिहास की पुकारों को सुन रहाहै ! कोई प्रेरणा उसे घर से बाहर निकालती है, बहुत वर्षों तक इधर उधर घुमाती है और अन्त में वह **'प्रज्ञाचक्षु संन्यासी'** के पास आता है और उनका आशीर्वाद पाकर अपने मिशन पर चल देता है। वह अपने जीवन में तपस्या किये बिना अपने 'मिशन' पर नहीं निकलता। एक **'तपस्वी'** ही को 'मनुष्यों के शिक्षक' बनने का अधिकार है। क्या अर्वाचीन भारत में दयानन्द से बढ़कर कोई तपस्वी हुआ है?

दयानन्द की जंगलों और पहाड़ की चोटियों पर घूमने की रोमांचकारी कथा है। उसका कुछ अंश उनने हमें अपने आत्मचरित में बतलाया है। इन भ्रमणों में दयानन्द का उद्देश्य केवल धर्मसम्बन्धी दर्शनशास्त्र का अध्ययन करना न था किन्तु योगविद्या को सीखना था। मैं दयानन्द को केवल शोधक ही नहीं समझता प्रत्युत योगी भी मानता हूँ। वर्षों की खोज और कष्टों के पश्चात् नर्वदा के किनारे पर दयानन्द को सच्चे योगी मिलते हैं जिन्हें वह 'दीक्षित' योग विद्या में निपुण कहता है। 'चाणोदा कन्याली' में उसे वे साधु मिलते हैं जो 'योगानन्द' नाम से प्रसिद्ध थे। उनके विषय में दयानन्द कहते हैं कि वे 'योगविद्या में पारंगत' थे। वे आत्मचरित में लिखते हैं कि "उनके पास मैं एक विद्यार्थी के रूप में गया और उनसे मैंने योगविद्या के सिद्धान्त और कुछ क्रियाऐं भी सीखीं" दयानन्द को चाणोदा में दो और योगी भी मिले जिनका नाम ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि था। वे कहते हैं कि उनके पास मैंने योग का अभ्यास किया और हम तीनों 'उच्च योगविद्या' के विषय में बहुत सा विचार करते थे। अन्त में वे चले गये और उनके कथनानुसार एक मास के पश्चात् मैं उन्हें मिलने अहमदाबाद के समीप दूधेश्वर मन्दिर

में गया, जहां कि उनने मुझे योगविद्या के अन्तिम रहस्य और क्रियायें बताने की प्रतिज्ञा की थी। उनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, मैं इस महान् विद्या के क्रियात्मक भाग के ज्ञान के लिये उनका ऋणी हूँ। इसके बाद मुझे पता चला कि अब तक मुझे जो योगी मिले हैं उनसे भी बड़े योगी परन्तु सबसे बड़े वे भी नहीं–राजपूताने के आबू पहाड़ की चोटियों पर हैं। मैं आबूपहाड़ की ओर **'अर्बदा भवानी'** आदि प्रसिद्ध पवित्र स्थानों को देखने के लिये चल पड़ा और वे लोग जिनकी मैं तलाश में था अन्ततः मुझे भवानीगिरि पर मिले और उनसे मैंने बहुत सी योग की क्रियायें सीखीं। जोशीमठ में भी उन्हें कुछ योगी मिले जिनसे उनने योगविद्या सीखी।

बहुधा समझा जाता है कि दयानन्द का जीवन केवल प्रचार यात्राओं और सार्वजनिक शास्त्रार्थों का जीवन है। मेरा विश्वास है कि उसका जीवन यथार्थ में **'तपस्या'** और **'योग'** का जीवन था। उसके 18 वर्ष के महान् कार्य के लिये–और उसके जीवन के 18 वर्ष अत्यन्त कर्मण्यता से भरपूर हैं–शक्ति उसके **'वैराग्य अभ्यास'** और **'तप'** से प्राप्त हुई थी जो कि योग के मुख्य अंग हैं। गुरु से आशीर्वाद पाकर वह प्रचार के लिये निकलते हैं। चार वर्ष के पश्चात् वह फिर 'एकान्त वास' करते हैं। वह गंगा के किनारे उच्च जीवन प्राप्त करने और समाधि लगाने के लिये फिर एकान्त वास करते हैं। वहां पर उनका अद्भुत जीवन है! कोई कपड़े नहीं, केवल एक लंगोटी तन पर है; शिशिर ऋतु की ठण्डी हवा बह रही है, पर कोई बिस्तर नहीं। वह रेती पर सोते हैं, उपवास करते हैं, प्रार्थना करते हैं, और समाधि लगाते हैं। यह आदित्य 'ब्रह्मचारी' अहिंसा 'सत्य' अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच यमों तथा नियमों का पालन करता हुआ एकान्त में योगाभ्यास करता है।

हे एकान्त किसने तुम्हारा गान गाया है?
किसने तुम्हारे मधुर स्वर को जाना है?
केवल नग्न आत्मा ने तुम्हें जाना!
केवल नग्न आत्मा ने तुम्हारे लावण्य का रस पान किया है?

यह एकान्त समय की तपस्या और ध्यान ही है जिससे मनुष्य सचमुच उस 'उस छिपे हुये परमेश्वर' से सहयोग प्राप्त करता है जिससे जीवन का सौन्दर्य तथा शक्ति बढ़ती है। रेवरेण्ड टी. जे. स्काट (क्रिश्चिन मिशनरी) ने उस योग के समय में नदी के किनारे रहने वाले दयानन्द का सुन्दर चित्र खींचा है। स्काट लिखते हैं–

''मध्यान्होत्तर मैंने जल के पास रेत में पड़े हुये एक फकीर को देखा जिसकी पवित्रता और विद्या के विषय में मैंने बाजार में मनुष्यों की भीड़ में सुना था। मैंने उनको छोटी सी फूंस की झोंपड़ी में बैठे हुये पाया। वे बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनका शरीर हरक्यूलस के समान वृहत्काय वाला शिर विस्तारयुक्त और सुन्दर, तथा परोपकार पूर्ण चेहरा था। वे लगभग बिल्कुल नग्न थे और वे एक साथ मनोहर बातचीत में लग गये। मैंने उनको उन साधुओं की श्रेणी में पाया जिन्होंने सर्वथा संसार को त्याग दिया हो और जो

ईश्वर के संतत ध्यान में रहते हों। बातचीत से पता लगा कि वे बुद्धिमान् और हिन्दुओं की प्राचीन विद्या के पूर्ण पण्डित हैं। वे केवल संस्कृत ही बोलते थे और हमारी बातचीत एक दुभाषियें के द्वारा होती थीं।''

दयानन्द एक **महान् योगी** था! मुझे डर है कि बहुत से आर्यसमाजी भी दयानन्द को इस रूप में नहीं देखते, हिन्दुओं का अधिकांश भाग 'उन्हें मूर्तिभंजक' अथवा अलग-2 अधिक से अधिक उन्हें एक 'संशोधक' के रूप में देखता है। मेरा विश्वास है कि दयानन्द ने योग विद्या का अध्ययन किया था। एक दिन उनके पास एक शिक्षित युवक आया जिसे योग की शक्ति में विश्वास न था-

वह पूंछता है 'स्वामी जी क्या आपका योग की सिद्धियों में विश्वास है?' दयानन्द का उत्तर सारगर्भित है:- 'क्या मेरा कार्य इसका साक्षी नहीं'? एक मनुष्य उनसे पूछता है कि ''क्या पतंजलि के दर्शन में जो योगसिद्धियें लिखी हैं वे विश्वासनीय हैं'? दयानन्द उत्तर देता है ''तुम्हारी शंका बुद्धिपूर्वक नहीं है। योग का प्रत्येक अक्षर सत्य है। योग कोई पुराण नहीं प्रत्युत वह एक शास्त्र है जो कि क्रियायुक्त आध्यात्मिक अनुभव से बनकर एक विद्या के रूप में संग्रथित हुआ है''। 1880 के दिसम्बर के थियासोफिस्ट के अंक में स्वामी दयानन्द, कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवटस्की के बीच हुये एक बड़े रोचक वार्त्तालाप का उल्लेख है जो कि मेरठ में हुआ था। उनके कुछ प्रश्नों के उत्तरों से दयानन्द के योगविद्या विषयक विचार प्रकट होते हैं। दयानन्द ने कहा कि एक सच्चा योगी अपने सहयोगी दूसरे योगी के साथ बिना किसी तार पोस्ट आदि वाह्य साधन के विचारपरिवर्तन कर सकता है एक योगी दूसरों के मन की बातों को जान सकता है। परन्तु ऋषि ने ठीक बतलाया कि योगी एक ''जादूगर'' नहीं है। योग प्रकृति के नियमों का विरोध नहीं प्रत्युत वह तो प्रकृति के नियमों के वास्तविक अध्ययन पर निर्भर है और न सच्चा योग वाह्य वस्तुओं का ही है इसे दयानन्द ने 'व्यवहारविद्या' कहा है। इसमें और योगविद्या में अन्तर है साथ ही उच्च योग अर्थात् 'राजयोग का हटयोग से भी भेद करना चाहिये। हठयोग जिसका सम्बन्ध आसन और प्राणायाम से है शरीर का व्यायाम है। राजयोग का मन से सम्बन्ध है अर्थात् 'प्रत्याहार', 'धारणा' और 'ध्यान' से, यह मन का सुधार करता है और आत्मिक शक्ति को उभारता है। राजयोग जिसकी पराकाष्ठा समाधि है, बहुत से नियम हैं। योग की दीक्षा (विद्या में प्रवेश) पाने के लिये, ऋषि दयानन्द भाष्यभूमिका में लिखते हैं कि, मनुष्य को आवश्यक है कि नियमों के अनुसार चले। 'ब्रह्मचर्य' या पवित्रता एक मुख्य नियम है। दूसरा नियम है शुद्ध और बलवान् मन होने का योग निर्बल मस्तिष्क वालों के लिये नहीं है। योग के लिये 'इन्द्रियजय', 'एकाग्रता' और 'ध्यान' की आवश्यकता है। एक तीसरा नियम मेरी समझ में 'निर्भयता' है। जहां भव है वहां योग नहीं रह सकता। दयानन्द का यह कथन वास्तव में ठीक है कि-''योग सब विद्याओं में कठिन है और इस समय बहुत कम लोग उसके सीखने के लायक है'' निस्सन्देह बहुत कम; क्योंकि हमारे आधुनिक जीवन में चित्त-वृत्तियों का विक्षेप (इधर उधर फैलना) और उत्तेजना होती रहती है। अधिकांश लोगों के लिये उनका 'कर्त्तव्य' ही योग की शिक्षा है। उनको पहिले अपने कर्त्तव्य को ध्यान और सत्य के साथ करना सीखना चाहिये फिर वे दूसरे योग साधनों के योग्य हो

सकते हैं। इसलिये 'स्वाध्याय' और 'समाज सेवा' की आवश्यकता है। एक से मन की एकाग्रता और अतएव शुद्धि होती है और दूसरे से 'प्रेम' उभरता है, इसलिये हृदय की शुद्धि होती है।

मैंने कहा है कि योग की शक्ति के विकास के लिये तपस्या आवश्यक है। परन्तु सच्ची तपस्या उसका नाम नहीं है जो झूंठे साधु अपने शरीर को कष्ट पहुंचा कर मूर्ख स्त्री पुरुषों से धनहरण करने के लिये करते हैं। दयानन्द की तपस्या एक साधारण वैरागी को तपस्या के समान न थी जो अपनी आत्मा को कारागार में बन्द करता है और बन्धनों से जकड़ देता है। दयानन्द की तपस्या 'डायोजिनीस' के समान एक मनुष्यद्वेषी की भी न था। परन्तु वह तपस्या एक मनुष्य जाति के प्रेमी की थी। जिसका हृदय आशावाद से अत्यन्त भरपूर था। उसका नाम **'दयानन्द'** बिना कारण के नहीं है। 'आनन्द' शब्द का अर्थ हर्ष है और वह ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में बतलाता है ''आनन्द की उपस्थिति में ही विद्या (सरस्वती) का निवास होता है'' 'सरस्वती' (विद्या) सन्देहवादी या मनुष्य द्वेषी के लिये नहीं है। विद्या उसी को फलती है जिसके हृदय में आनन्द है। दयानन्द की तपस्या एक मनुष्य तत्त्वज्ञ की तपस्या है। इसका उद्देश्य उसे मनुष्य जाति की सेवा करने के लिये पवित्र, संयमयुक्त और बलवान बनाना था। उसकी तपस्या ने उसके मन और शरीर दोनों की शक्ति को बढ़ाया था।

लोग 'दयानन्द' पर आश्चर्य करते हैं कि वह गंगा के किनारे केवल एक लंगोटी धारण किये सर्दी और धूप में बैठा रहता था। वे भूल जाते हैं कि उसने आत्मसंयम से अपने शरीर को चट्टान के समान दृढ़ बना लिया था। आज हम उसके मार्ग की बुद्धिमत्ता का अनुभव करते हैं। क्योंकि आजकल हम 'सूर्यताप से इलाज' की बात सुनते हैं। आज पश्चिम चिकित्सा विज्ञान ने इस बात का अनुभव करना प्रारम्भ किया है कि अधिक वस्त्र न केवल स्वास्थ्य के लिये अनावश्यक ही हैं प्रत्युत हानिकारक है। आज हमें कपड़ों की एक नयी फिलासफी वह बात सिखला रही है जिसे एक पीढ़ी पूर्व दयानन्द ने उपदेश और उदाहरण द्वारा बतलाया था कि तपस्या शरीर को ढूँढ़ बनाती है और जीवन के दो सबसे बहुमूल्य खजाने **स्वास्थ्य** और **बल** सूर्य की धूप तथा खुली वायु से प्राप्त होते हैं।

दयानन्द की महत्ता एक कर्मवीर के रूप में भी है। इस ब्राह्मण के अन्दर जो संन्यासी हो जाता है क्षत्रिय (युद्धशील) आत्मा वास कर रही है। वह एक बड़ा योद्धा है। 'कट्टरता' के विरुद्ध वह कैसा घोर संग्राम करता है। अहिंसा शान्ति, या सहिष्णुता का अर्थ 'असत्य' था 'गलती' से मेल नहीं हो सकता। मैं कभी-2 सोचता हूँ कि अहिंसा को पूरा करने वाली दूसरी सच्चाई **'प्रतिरोध'** है। 'जीसस के विषय में हम पढ़ते हैं कि एक अफसर ने जो पास खड़ा हुआ था अपने हाथ से जीसस को चोट लगाकर कहा कि 'तुम बड़े धर्मगुरु को इस प्रकार क्यों जबाब देते हो?' जीसस ने उत्तर दिया:-'यदि मैंने 'पाप' की बात कही है तो तुम उसे 'क्यों चोट पहुंचाते हो' इन शब्दों से जीसस के अन्दर से 'प्रतिरोध' की फिलासकी का साक्ष्य मिलता है। दयानन्द ने उन लोगों से जो बाहर या भीतर से हिन्दू समाज पर आक्रमण कर रहे थे कहा कि 'क्यों मेरी आर्यजाति को चोट पहुंचाते हो?' दयानन्द उसकी सहायता के लिये एक योद्धा की शक्ति के साथ आगे बढ़ता है।

'प्रतिरोध' का तत्व गीता के दर्शनशास्त्र में पाया जाता है और इसमें उस सच्चाई पर जोर है

जिसको मुझे भय हैं कि कतिपय क्राइस्ट के उपदेश अर्थात् प्रेम के सन्देश के व्याख्याकारों ने भुला दिया है। प्रेम घृणा की अपेक्षा कहीं अधिक सफलता के साथ 'प्रतिरोध' कर सकता है। दयानन्द ने अपनी पूरी शक्ति से उन मिथ्या बातों का प्रतिरोध किया जो हमारे समाज की जीवन शक्ति को नष्ट कर रही थीं। दयानन्द ने एक वीर के समान संकल्प किया और दुःखों को झेला। इस दृष्टि से वह लूथर के समान था। परन्तु दयानन्द को 'भारत का लूथर' कहना जैसाकि बहुत से आर्य समाज और यूरोपियन समालोचक कहते हैं, ऋषि के साथ पूरा न्याय नहीं करता है। दयानन्द मेरी समझ में अपने जीवन की तपस्या और अपने सन्देश के कारण 'लूथर से' बढ़कर है। मैं समझता हूँ कि हमारे इस युग में किसी दूसरे मनुष्य ने वेदों की महान् सच्चाईयों और उनके सार्वभौम मूल्य को दयानन्द की अपेक्षा अधिक सच्चाई से नहीं देखी।

उनके जीवन की मुख्य आकांक्षा आर्यजाति का नया संगठन करने की थी। और उनका पुनः संगठन का प्रकार 'पश्चिमीपन' की नकल न थी। पश्चिमी सभ्यता की जड़ें 'भोग' से हिल रही हैं। वह ऐन्द्रियिक सुख की सभ्यता है। ऋषि दयानन्द जातीय जीवन को 'विद्या' और 'समर्पण' के नाम पर बनाना चाहता था विद्या अन्धविश्वास को दूर करेगी ौर विद्यारूपी दीपक में वह चाहता था कि हम तपस्या का तेल डालें। 'विद्या' ही वह प्रकाश है जिससे जाति अन्धकार से निकल सकेगी।

'विद्या' और 'तपस्या' ज्ञान और समर्पण पूर्वक किये काम को भारत का उद्धार कर सकेंगे। ऐसा ऋषि यानन्द का विश्वास था। इसका साक्ष्य उनके जीवन से मिलता है क्यों कि यह ऋषि एक 'कर्मयोगी' भी था। बारम्बार वे अपने व्याख्यानों में और अपने वेहभाष्य मं वह क्रियानिष्ट होने और 'कर्म' के महत्व को प्रकट करते हैं। उसकी फिलासफी के अनुसार कर्मनिष्ठा आध्यात्मिकता से अलग नहीं है। वह फिलासकी प्लेटो की थी जो समझता था कि ''सबसे उच्च अवस्था कर्मरहित शान्त जीवन' से प्राप्त होती?' वैसी ही फिलासफी अरस्तु की थी जो कहता था कि ''ईश्वर की दृष्टि में सब काम 'तुच्छ' और 'अयुक्त' है और 'आचार' की पराकाष्ठा एक प्रकार का 'ध्यान और विचार युक्त जीवन है।'' ऋषि दयानन्द की फिलासफी उच्चतर प्रकार की है। उसके अनुसार–आध्यात्मिक जीवन कर्मणयता में है, धर्म 'कर्म का नाम है–परन्तु वह कर्मण्यता ईश्वर भक्ति के साथ हो, वह कर्म ईश्वर को समर्पित करके किया गया हो।

पुराने धर्मग्रन्थों में किसी 'वोधिसत्त्व' की कथा आती है। वह स्वर्ग के द्वार पर खड़ा है। वह 'मुक्ति' में प्रवेश करने को है। ठीक उसी समय पृथ्वी के किसी भाग से एक आवाज आती है:–''मैं पीड़ित हो रहा हूँ क्या कोई मेरी सहायता न करेगा?'' इस पर बोधिसत्त्व' पुकार उठता है–'मुझे मुक्ति या स्वर्ग नहीं चाहिये–मुझे एक भाई या बहिन का दुःख दूर करने के लिये फिर वापिस पृथ्वी पर जाना है' ऐसा ही 'बोधिसत्त्व वह व्यक्ति भी था जिसको हम दयानन्द नाम से पूजा करते हैं। वह अनुभव करता था कि जब तक भारत पुनर्जाग्रत न हो और आर्यजाति पुनरुज्जीवित न हो, उसे शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिये बिना आराम किये कट्टर लोगों के विरोध का मुकाबिला करता हुआ 'आर्य सन्देश' की जो विद्या और कर्म का तथा सर्वोपरि पुरुष की पूजा की घोषणा करता हुआ स्थान–स्थान पर जाता है। लोगों ने तुझ पर हे भारत के बोधिसत्त्व ईंट और पत्थरों की वर्षा की थी। परन्तु आज निस्सन्देह हम तुझे धन्य समझते हैं और तेरे ऊपर अपनी 'श्रद्धा और प्रेम के बसन्त पुष्पों' की वर्षा करते हैं। ❁❁❁

गतांक से आगे–

क्रोधादि कषायों को वश में रखना

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

कभी–कभी मनुष्य ऐसी कठिनाई में भी फँस जाता है कि सीधे–सादे उपायों से न वह अपने जान माल की रक्षा कर सकता है न अपने प्रबल बैरी की चोट से बच सकता है और न किसी भारी फितने–फिसाद को दबा सकता है। ऐसे कठिन प्रसंग के लिए मनुष्य के पास माया नामक एक शक्ति रहती है कि जिसके द्वारा वह झूठमूठ बातें बनाकर या कुछ दिखाकर अपनी जान बचा सकता है या किसी भारी फिसाद या उपद्रव को दबा सकता है। परन्तु इस निंद्य शक्ति का उपयोग अत्यन्त लाचारी दरजे या बहुत जरूरी समय के सिवा और कभी न करना चाहिए; बल्कि जहाँ तक हो सके इससे दूर ही रहना उचित है। क्योंकि मनुष्य का मनुष्यत्व परस्पर के व्यवहार से ही बनता है और परस्पर का व्यवहार आपस के विश्वास में जितना धक्का लगता है मनुष्य क मनुष्यत्व भी उतना ही बिगड़ता है। इसलिए इस मायाचार करने की शक्ति सदैव दबाये रखना ही उचित है। इसका उपयोग तो किसी ऐसा महान् लाचारी के समय ही करना चाहिए जबकि दूसरी कोई तदवीर चल ही न सकती हो और उसके बिना सिर पर कोई बड़ी भारी आपत्ति आती हो। परन्तु खेद की बात है कि आजकल के मनुष्य बात–बात में मायाचार से काम लेते हैं और झूठ, फरेब, धोखेबाजी, जालसाजी, आदि से अपने छोटे बड़े सब काम चलाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य के परस्पर के व्यवहार में बहुत बट्टा लग गया है और मनुष्य जाति की वास्तविक उन्नति का क्रम रुक गया है। इससे मनुष्य जाति की सारी सुख–शान्ति नष्ट हो गई है और उसके दु:खों की संख्या बढ़ गई है। इस मायाचार ने भारतवर्ष को विशेष रूप से घेर लिया है कि जहाँ लाखों आदमी मिलकर बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ तो क्या चलायेंगे, दो सगे भाई भी मिलकर अपना साँझा नहीं निभा सकते हैं। इसीलिये हिन्दुस्तान का व्यापार नहीं पनपते पाता है, और जरा सी चीजों के लिए हमें दूसरों का मुंह ताकना पड़ता है।

भय भी मनुष्य की बहुत रक्षा करता है। यदि सच पूछो तो भय ही उसे सब प्रकार की बुराइयों और आपत्तियों से बचाता है। यदि मनुष्य को भय न होता तो वह जलती हुई आग में कूद पड़ता और अपनी हानि लाभ का विचार किये बिना ही ऐसे–ऐसे अनेक उलटे पुलटे काम करता रहता। परन्तु इसके विपरीत बिना कारण भय की कल्पना करना, जो आपत्ति आने वाली है और टाले नहीं टलती है उसके झेलने के लिये तैयार न होना, किसी आपत्ति के आने पर भय के मारे अपने होश खो देना, भय के समय धीरज को छोड़कर आपत्ति से बचने का कोई उपाय न कर सकना, डर के मारे हक्के बक्के हो जाना, या अपनी रक्षा के मार्ग को निश्चित न कर सकना और बिना जरूरत भय के सन्मुख जाकर अपना सर्वनाश कर लेना, इत्यादि बातें ऐसी हैं जो भय का दुरुपयोग करने या उसकी मात्रा के बढ़ जाने से होती हैं और

जिनके कारण मनुष्य पर भारी विपत्तियाँ आती हैं और दुःख की भयंकरता बढ़ जाती है। सच तो यह है कि संसार के प्रायः सभी कार्यों में हानि लाभ, सम्पत्ति विपत्ति और सुख दुःख लगे रहते हैं, अर्थात् यहाँ कोई भी कार्य ऐसा दिखाई नहीं देता है कि जिसमें केवल सुख ही सुख हो और दुःख नाम को भी न हो, या जिसमें केवल लाभ ही लाभ हो, हानि जरा भी न हो। ऐसी अवस्था में मनुष्यों को उन कामों से भय खाना चाहिए जिनमें हानि अधिक हो और लाभ कम हो और अपनी विचारशक्ति से ऐसे काम चुन लेना चाहिए जिनमें विपत्ति कम हो और लाभ अधिक हो। परन्तु जिन लोगों में भय की मात्रा बढ़ जाती है उनकी विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है, इस कारण वे इस बात का निश्चय ही नहीं कर सकते हैं कि किस कार्य में अधिक विपत्ति है और किसमें कम। यदि कोई उनका इसका निश्चय भी करावे तो वे भय के मारे कम विपत्ति वाले कामों को भी करने का साहस नहीं करते हैं और भय तथा आकुलता ही में अपना जीवन बिता देते हैं। इस कारण प्रत्येक कार्य में भय से काम तो अवश्य ही लेना चाहिए, परन्तु उसको जरूरत से ज्यादा हर्गिज न बढ़ने देना चाहिए।

स्नेह और द्वेष, रंज और खुशी भी मनुष्य की बहुत काम की चीजें हैं। सच पूछो तो ये चारों शक्तियाँ मनुष्य से तरह-तरह के काम कराती हैं और उसको उन्नति के मार्ग पर चलाती हैं। परन्तु ये चारों बातें भी तभी तक लाभकारी होती हैं जब वे अपनी उचित मर्यादा के भीतर रहती हैं। मर्यादा उल्लंघन करने पर तो वे भी बहुत भयंकर हो जाती हैं और मनुष्य को बहुत हानि पहुँचाती हैं। जैसे कि स्नेह या मुहब्बत की आग बढ़ जाने से मनुष्य उस स्त्री या पुरुष से मुहब्बत करने लगता है जिससे मुहब्बत करने का उसको अधिकार नहीं होता है। फल यह होता है कि उसे धक्के खाने पड़ते हैं और अपमानित होना पड़ता है। वह इस मुहब्बत में कभी-कभी ऐसा विव्हल हो जाता है कि अपने तथा अपने प्रेमपात्र के, दोनों के हानि लाभ को भूल जाता है। जैसा कि इस देश के माता पिता अपनी संतान के स्नेह में ऐसे बेसुध हो जाते हैं और लाड़-प्यार करके उनको ऐसा बिगाड़ देते हैं कि फिर उनको सारी उम्र धक्के ही खाने पड़ते हैं और अपने माता पिता के वे दुःखदाता बन जाते हैं। स्नेह की मात्रा बढ़ जाने से मनुष्य की विचारशक्ति शिथिल पड़ जाती है और उसे अपने प्रेमपात्र की बुराइयाँ भी भलाई के रूप में दिखाई देने लगती हैं। इस तरह उसके प्रति पक्षपात की मात्रा बढ़ जाने से वह बिल्कुल विचारशून्य हो जाता है। इसी प्रकार नफरत या द्वेष की मात्रा बढ़ जाने से भी मनुष्य अपनी विचारशक्ति को खो बैठता है और जिससे द्वेष हो जाता है उसकी भलाई या गुण को भी वह बुराई या दुर्गुण समझने लगता है। वह उसके नाम से नफरत करने लगता है और उसकी शकल देखकर मुंह फेर लेता है। बल्कि कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि वह जिस वस्तु से नफरत करता है उसका नाम सुनकर ही उबकाई लेने लग जाता है। इसी प्रकार रंज के बढ़ जाने से भी मनुष्य की अकल मारी जाती है और वह पागलों जैसे कार्य करने लगता है। वह अपना सिर फोड़ता है, छाती पीटता है, कपड़े फाड़ता है, बाल नोंचता है, जहर खा लेता है, पानी में डूब मरता है, आत्मघात कर लेता है या ऐसे-ऐसे और भी कई तरह के विपरीत कार्य करता है। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो रंज

मनुष्य का ऐसा उत्तम बन्धु है जो किसी कार्य के बिगड़ जाने पर या इच्छा के विपरीत कार्य हो जाने पर उसको समझाता है कि यह कार्य हमें इतना अधिक प्यारा है कि जिसके लिए बारंबार प्रयत्न करने और नवीन–नवीन युक्तियों से काम लेकर उसे किसी न किसी प्रकार सिद्ध करने को जो तड़फता है, अर्थात् रंज यही सिखलाता है कि इस कार्य के बिगड़ जाने पर इससे मुंह नहीं छिपाना चाहिए, बल्कि पहले से अधिक साहस करके जिस तरह हो सके इस बिगड़े कार्य को बनाकर ही छोड़ना चाहिए। परन्तु मूर्ख लोग अधिक रंज करके अपने साहस को खो बैठते हैं और अपनी बुद्धि को भ्रष्ट करके उस काम को ही छोड़ देते हैं, बल्कि रंज मनाने में लगकर अपने अन्य जरूरी कामों को भी बिगाड़ लेते हैं और इस तरह अपनी हानि पर हानि करते हैं। वे रंज जैसी उत्तम शक्ति को बदनाम करके कहने लग जाते हैं कि क्या करें, हम तो रंज में पड़े रहने से कुछ भी न कर सके और हमारे सभी काम बिगड़ गये। अतएव मनुष्य को उचित है कि वह भारी से भारी विपत्ति आने पर या अच्छे से अच्छा काम बिगड़ जाने पर भी कभी अधिक रंज न करे और अपनी बुद्धि या साहस को कभी बिगड़ने न दे, बल्कि रंज या खेद की अवस्था में साहस और बुद्धि से अधिक काम लेवे और अपने बिगड़े हुए काम को सुधारने का प्रयत्न करे। यदि कोई ऐसी आपत्ति आ पड़े कि जिसकी किसी प्रकार पूर्ति न हो सकती हो, तो ऐसी अवस्था के अनुकूल किसी ऐसे उत्तम कार्य में लग जावे कि जिससे वह रंज भूल जाय। अर्थात् रंज की कोई बात हो जाने पर खाली कभी न बैठे, क्योंकि खाली बैठने से रंज बढ़ता है और रंज के सिवा और कुछ नहीं सूझता। इसलिए रंज के समय तो अवश्य ही किसी न किसी काम में लग जाना चाहिए और उसे इतनी तनदेही के साथ करना चाहिए कि जिससे और कोई ख्याल पास न आने पावे।

खुशी या आनन्द भी मनुष्य की उन्नति में बहुत सहायता पहुँचाता है। क्योंकि वह उसे अच्छे–अच्छे और लाभकारी कामों को करने के लिए उत्तेजित करता है। एक खुशी मनुष्य को दूसरे ऐसे खुशी के काम को करने के लिए प्रोत्साहन देती है कि जिससे पहले की अपेक्षा अधिक खुशी हो। परन्तु खुशी में आपे से बाहर हो जाना या खुशी के मारे अन्य आवश्यकीय कामों को भूल जाना भी बहुत हानिकारक है। इसके सिवा अधिक खुशी मनाने में सबसे बड़ी बुराई यह होती है कि जिस काम के लिए पहले अत्यधिक खुशी की जाती है उसके बिगड़ जाने पर उतना ही अधिक रंज भी होता है। संसारी कामों का बनना बिगड़ना अपने हाथ में न रहने के कारण उनके लिए अधिक खुशी या रंज मनाना बिल्कुल व्यर्थ है, क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य को रंज और खुशी से कभी छुटकारा ही नहीं मिल सकता है।

गरज यह कि लोभ क्रोधादि सभी उफान जब तक मनुष्य के वश में रहते हैं, दबाने से दबते हैं और उभारने से उभरते हैं, और जब तक वह अपनी विवेकबुद्धि से काम लेकर उनको अपनी इच्छा के अनुसार चलाता रहता है तब तक वे उसके बहुत कार्यकारी और सहायक रहते हैं, परन्तु जब वह बेपरवाह हो जाता है और इनकी पूरी–पूरी देखभाल नहीं रखता है तब ये ही शक्तियाँ उस पर अपना अधिकार जमा लेती हैं और उसे कठपुतली की नाईं नचाकर उसे बरबाद कर डालती हैं। जो मनुष्य यह कहता है कि

'मुझे अमुक आदमी ने गुस्सा दिलाया,' या 'क्या कहूँ मुझे गुस्सा आ ही गया,' समझना चाहिए कि वह अपने गुस्से को काबू में नहीं रखता है, बल्कि वही गुस्से के काबू में है। इसी प्रकार जो मनुष्य किसी की खुशामद में आ जाता है या अपनी बड़ाई सुनकर फूल जाता है, समझना चाहिए कि उसे अभिमान ने ऐसा दबा रक्खा है कि वह अपनी विवेकशक्ति से भी काम नहीं ले सकता है। इसी प्रकार अन्य सभी बातों में समझ लेना चाहिए और क्रोधादिक आवेगों पर अपना पूरा-पूरा चौकी पहरा रखना चाहिए। किसी भी शक्ति या उफान को अधिक उभरने या शिथिल न होने देना चाहिए, वरन् उनसे यथोचित काम लेते रहना और उन्हें अपनी जरूरतों के अनुसार चलाना चाहिए। इस बात का भी हर वक्त ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रकार खीर पकाने के लिए चूल्हे में आग जलाते रहना जरूरी है, उसी प्रकार सांसारिक कामों को करने के लिए मनुष्य के हृदय में लोभ, क्रोध, मान आदि कषायों की आग का रहना भी बहुत जरूरी है। इसी प्रकार जो रसोइया जरूरत के अनुसार चूल्हे की आग को कमती बढ़ती करता रहता है वह अच्छी रसोई बना लेता है, परन्तु जो अनाड़ी पूरी सावधानी नहीं रखता वह चूल्हे की आग को या तो बिल्कुल कम कर देता है जिससे उसकी खीर अधकच्ची रह जाती है, या वह उस आग को इतनी तेज कर देता है कि जिससे उफान आकर सारी खीर बाहर निकल जाती है या बर्तन ही में जल जाती है। इसी प्रकार जो बुद्धिमान् पुरुष अपने हृदय आवेगों की आग को अपने काबू में रखता है और जरूरत के अनुसार उसे मन्द या तेज करके सावधानी से काम लेता है वह अपने सब कामों को उत्तम रीति से पूर्ण करके संसार में यश पाता है, परन्तु जो मूर्ख असावधान रहकर अपने कषायों के सामंजस्य को बिगाड़ देता है वह स्वतः बिगड़ जाता है और संसार में बदनाम होता है। इस लिए मनुष्य को सदैव सावधान रहकर विवेक के साथ काम करना चाहिए, क्योंकि ऐसा किये बिना उसका इस बहुरंगी दुनियां में निस्तार नहीं है। ❁❁❁

पृष्ठ संख्या 4 का शेष–

ब्रह्म का उपदेश मिला है। वहाँ ब्रह्म का प्रथम पाद प्रकाशमान् है, जिसकी प्राची, प्रतीची, दक्षिणा, उदीची ये चार कला हैं। द्वितीय पाद अनन्तवान् है, जिसकी पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, समुद्र चार कला हैं। तृतीय पाद ज्योतिष्मान् है, जिसकी अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् चार कला हैं। चतुर्थ पाद आयतनवान् है, जिसकी प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन चार कला हैं। माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म का प्रथम पाद वैश्वानर, द्वितीय पाद तैजस, तृतीय पाद प्राज्ञ और चतुर्थ पाद प्रपंचोपशम है। ❁❁❁

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	**मूल्य 40)**	**दयानन्द और विवेकानन्द**	**मूल्य 15)**
बाल सत्यार्थ प्रकाश	**मूल्य 30)**	**बाल मनुस्मृति**	**मूल्य 12)**
यज्ञमय जीवन	**मूल्य 30)**	**इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ**	**मूल्य 12)**
मील का पत्थर	**मूल्य 20)**	**ओंकार उपासना**	**मूल्य 12)**
भ्रांति दर्शन	**मूल्य 20)**		

गतांक से आगे–

ब्रह्मचर्य–विज्ञान

लेखकः–जगन्नारायणदेव शर्मा

यम–नियम और ब्रह्मचर्य

'अपरिग्रह' के पालन से जन्म–सुधार के विचार उत्पन्न होते हैं। हृदय में निस्वार्थता का भाव उदित होता है।

महर्षि पतंजलि ने इन पाँचों यमों को अकाट्य तथा सार्वभौम महाव्रत माना है। अर्थात् इनका पालन सब जाति, सब देश, सब समय और सब अवस्था में किया जा सकता है।

अब हम उनके योगदर्शन में लिखे हुये नियमों का आवश्यक वर्णन करते हैं–

"**शौच–सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर–प्राणिधानानि नियमाः।**" –(योगदर्शन)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान–ये पाँच नियम कहलाते हैं।

शारीरिक और मानसिक पवित्रता का नाम 'शौच' है। भोग के साधनों की अनिच्छा का नाम 'सन्तोष' है। सुख–दु:ख, शीतउष्णादि द्वन्द सहने, तथा परिमित आहार–विहार करने का नाम 'तप' । ओंकारादि जप और वेद–शास्त्रों के अध्ययन का नाम 'स्वाध्याय' है। और फल–रहित हो, परमात्मा की उपासना का नाम 'ईश्वर–प्रणिधान' है।

अब नियम के पालन से जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें भी एक–एक कर कहते हैं–

"**शौचस्त्वांग जुगुप्सा परैरसंसर्गः।**"

"**सत्वशुद्धि सौमनस्येकाग्र्येन्द्रिय जयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।**" –(योगदर्शन)

वाह्य 'शौच' से शरीर का मोह और पराये के साथ सम्बन्ध की इच्छा नहीं रहती। 'आभ्यन्तर' शौच से मन की शुद्धि, प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रिय–जय और आत्म–दर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।

"**सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः।**" –(योगदर्शन)

'सन्तोष' की साधना से परम सुख मिलता है। तृष्णा का नाम न होने से मन की अशान्ति दूर हो जाती है।

"**कायेन्द्रिय शुद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः।**" –(योगदर्शन)

'तप' की साधना से सुन्दर स्वाध्याय और इन्द्रियों पर अधिकार प्राप्त होता है।

"**स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोग।**" –(योगदर्शन)

'स्वाध्याय' करने से इष्ट–साधन और आत्म–ज्ञान की उपलब्धि होती है।

"**समाधि सिद्धिरीश्वर–प्रणिधानात्।**" –(योगदर्शन)

'ईश्वर-प्रणिधान' से समाधि (अत्यन्त शान्ति) मिलती है। आत्मा या परमात्मा में लीन होने पर कोई सुख फिर शेष नहीं रहता। यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है।

यद्यपि यम और नियम योग के अंग हैं, तथापि ये 'ब्रह्मचर्य' के भी प्रधान अवयव हैं। ब्रह्मचर्य की दशा में प्रत्येक ब्रह्मचारी को पाँच यमों और पाँच नियमों का पालन नितान्त आवश्यक है। बिना इनके ब्रह्मचर्य की कदापि सिद्धि नहीं हो सकती है।

धमाचार्य मनु ने भी यम और नियमों के सम्बन्ध में अपनी ऐसी ही सम्मति प्रकट की है-

यमान्सेवत सततं, न नित्यं नियमान्बुधः।

समान्पतत्यकुर्वाणो, नियमान्केवलांभजन्।। -(मनुस्मृति)

बुद्धिमान् सदैव यमों का सेवन करे, नियमों का पालन नित्य न भी करे, क्योंकि यमों का न पालन करने वाला मनुष्य केवल नियमों का पालन करता हुआ भी पतित हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन न करने वाला पुरुष-शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान करते रहने पर भी कार्य में असफल होता है। अतएव यम और नियम दोनों की समान रूप से प्रतिष्ठा करनी चाहिये। कारण यह है कि ब्रह्मचर्य के ये दोनों आवश्यक अंग हैं, या यों समझिये कि ब्रह्मचर्य रूपी आत्मा इन्हीं यमों-नियमों से बने हुये शरीर में वास करता है।

अब तो हमारे पाठक यम-नियम तथा ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध भली भाँति समझ गये होंगे।

यज्ञ और ब्रह्मचर्य

"यज्ञादभवति पर्जन्यः, पर्जन्यादन्नसम्भवः।" -(मनुस्मृति)

यज्ञ से मेघ की उत्पत्ति होती है, और मेघ से अन्न पैदा होता है। और अन्न से सब जीते हैं।

यज्ञ की महिमा वेदों में विविध प्रकार से गाई गई है। जिसके द्वारा (परमात्मा) जाना जाय, ज्ञानी उसे 'यज्ञ' कहते हैं। यही कारण है कि उपनिषदों में ब्रह्मचर्य का यज्ञ-रूप से वर्णन किया गया है।

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य मेव। तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवयो ज्ञाता, तं विन्दतेऽथ आदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेवतद्ब्रह्मचर्येण ह्येवे ऽऽत्मानमनुविन्दते। -(छान्दोग्योपनिषद्)

'जिसे 'यज्ञ' कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है। उस ब्रह्मचर्य को जानने वाला ब्रह्म को प्राप्त होता है। जिसको 'इष्ट' कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य द्वारा यजन करके ही पुरुष ब्रह्म को पाता है।

"लोग जिसे 'सात्रायण' यज्ञ कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही अविनाशी जीव की रक्षा होती है। जिसे 'मौन' कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही परमात्मा का मनन किया जा सकता है। जिसे 'अनशनायन' कहा गया है, वह भी ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया हुआ आत्मभाव नष्ट नहीं होता। जिसे 'अरण्यायन' कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्यही है। क्योंकि ब्रह्मचर्य के द्वारा (कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का फल) ब्रह्मपुरी मिलती है। जो पुरुष इस ब्रह्मचर्यरूपी यज्ञ का अनुष्ठान करते

हैं, वे अग्नि–स्वरूप होकर अपने तथा औरों के पापों को भी तृण की भाँति भस्म कर देते हैं।''

एक स्थान पर ब्रह्मचर्य को यज्ञ मानकर ब्रह्मचारी को यज्ञकर्त्ता माना गया है। यज्ञ के प्रधान–प्रधान अंग, ब्रह्मचारी के कार्यों के कार्यों पर, रूपकालंकार में, घटाये गये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचर्य की अवस्था ही यज्ञ है। ब्रह्मचारी को यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं, उसे तो यों ही यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

महर्षि अंगिरा के पुत्र घोरनामा ऋषि ने देवकी के पुत्र श्री कृष्ण से अध्ययन के समय कहा कि ब्रह्मचारी के लिये विशेष कर्म नहीं हैं। उसे मरणकाल में चाहिये कि इस प्रकार कहकर मुक्त हो जाय– हे परमात्मन्! आप 'अविनाशी' हैं। हे देव! आप 'एकरस' रहने वाले हैं, और आप ही 'जीवनदाता तथा अतिसूक्ष्म' हैं। बस, इतने से ही उसकी सद्‌गति हो जायगी। इसका अभिप्राय यह है। कि यही उसके लिये अन्तिम यज्ञ है। इसलिये इस उपदेश को सुनकर श्री कृष्ण भी अन्य विचारों को छोड़कर परमात्मपरायण हो गये। अब यह बात भी सिद्ध हो गई कि ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ यज्ञ भी है। और ब्रह्मचारी ही यज्ञकर्त्ता है।

दो आदर्श ब्रह्मचारी

'ब्रह्मचारी सिंचति सानौ रेतः।
पृथिव्यां तेनजावन्ति प्रदि शश्वतस्रः।।' –(अथर्ववेद)

ब्रह्मचारी अपे सद्ज्ञान, पराक्रम, गिसद्धान्त, सदाचार तथा उत्तम गुणों को, बड़े–छोटे का विचार न कर, सबमें फैलाता है। इससे चारों ओर की जनता में नव–जीवन का संचार होता है।

हमारे पाठक इस बात को भली भाँति समझ चुके हैं कि ब्रह्मचर्य जैसे उच्च तथा सर्वोपकारी विज्ञान का पहले पहल इसी देश में आविष्कार हुआ था। यही कारण है कि अन्य देशों की अपेक्षा यहीं इसका सुधार और प्रचार विशेष रूप से हुआ।

हमारे मत से भूमण्डल के इतिहास में जितने अधिक उदाहरण ब्रह्मचर्य के यहाँ मिल सकते हैं, उतने और कहीं मिलना सम्भव नहीं।

इस देश में अनेक पुरुषों ने ब्रह्मचर्य –पालन की चेष्टा की है। उनमे से कुछ लोग अपने व्रत से विचलित भी हो गये। बहुतों को सफलता भी मिला, पर हम उन दो आदर्श ब्रह्मचारियों का परिचय करा देना चाहते हैं, जो वास्तव में अद्वितीय हुये हैं। वे अपने उसी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से आज भी जनता के श्रद्धा–भाजन हो रहे हैं। समस्त भारत के आर्य–साहित्य में उन दोनों महानुभावों का व्यक्तिगत जीवन हमें अमूल्य शिक्षा प्रदान करता है।

इनमें से पहले ब्रह्मचारी का नाम जगद्विख्यात महावीर हनुमान है। इनकी कथा रामायण में मिलती है। ये अपने जीवन पर्यन्त अक्षुण्ण ब्रह्मचारी रहे। इन्होंने अपने ब्रह्मचर्य का यहाँ तक पालन किया कि स्वप्न में भी कभी इनका वीर्य स्खलित न होने पाया। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से इनका शरीर वज्र के समान हृष्ट–पुष्ट हो गया था। ये महावीर्य के प्रभाव से कठिन से कठिन कार्य कर सकते थे। इनके ब्रह्मचर्य का

उद्देश्य केवल सेवा-कार्य था। इन्होंने बली से बली राक्षसों का मद चूर्ण कर डाला। अनुकरणीय स्वामिभक्ति, असीम पराक्रम, तेजस्वी स्वभाव और पवित्र अन्त:करण के लिये भी ये परम सिद्धि थे। इन गुणों से युक्त होने पर भी, वे बहुत बड़े विद्वान और मेधावी थे। वक्तृत्वकला से दूसरों का हृदय अपनी ओर भली भाँति खींचना जानते थे।

एक स्थान पर किष्किन्धा-काण्ड में श्रीरामचन्द्र भगवान् ने स्वयं अपने मुख से हनुमान की विद्वत्ता और वाक्-चातुरी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वह यों है-

महाबली बालि ने अपने भाई सुग्रीव को मार-पीट कर घर से निकाल दिया था। वे ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर इन्हीं हनुमान के साथ रहने लगे थे। एक दिन श्रीराम जी जानकी जी को खोजते हुये लक्ष्मण के साथ उधर आ निकले। सुग्रीव के मन में सन्देह और भय हुआ। उसने इन्हें रहस्य लेने के लिये भेजा। हनुमान भी विप्ररूप धर कर श्रीराम और लक्ष्मण से मिले। उनके भाषण से प्रसन्न होकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा-

तमभ्यभाष सौमित्रे! सुग्रीव-सचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः, स्नेहयुक्त मरिन्दमम्।।
नानृग्वेद विनीतस्य, नायजुर्वेद धारिणः।
नासामवेद-विदुषः, शक्यमेवं विभाषितुम्।।
नूनं व्याकरणं कृत्स्न मनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन, न किंचिदपशब्दितम्।।
न मुखेनेत्रयोश्चापि, ललाटे च भ्रुवोस्ता।
अन्येष्वपि च सर्वेषु, दोषः संविदितः कचित्।।
अविस्तर मसन्दिग्ध मविलम्बित मव्ययम्।
उरस्थं कण्ठगे वाक्यं, वर्त्तते मध्यमस्वरम्।।
संस्कार-क्रम-सम्पन्ना मद्भुता मविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं, वाचं हृदय-हर्षिणीम्।। -(वाल्मीकि-रामयण)

हे लक्ष्मण! मधुर वाक्य से स्नेहयुक्त सुग्रीव के वाणी-विशारद सचिव हुनमान से भाषण कर, यह ज्ञात हुआ कि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के न जानने वाले इस प्रकार का भाषण नहीं कर सकते। अर्थात् ये वेद-शास्त्र जान पड़ते हैं। निश्चय ही इन्होंने व्याकरण का अच्छा अध्ययन किया है। कारण यह है कि इन्होंने इतना अधिक बोलने परभी एक अशुद्धि नहीं की। मुख में, नेत्रों में और भूभाग में तथा अन्य किसी भी अवयव में इनके कहीं भी दोष नहीं दिखाई पड़ा।

सूक्ष्म रीति से, स्पष्ट-स्पष्ट, अस्खलित श्रुति-मधुर, न तो बहुत धीरे-धीरे और न बहुत जोर-जोर से, अर्थात् मध्यम स्वर में इन्होंने भाषण किया है। सुसंस्कृत नियमयुक्त, अद्भुत प्रकार से, प्रिय तथा हृदय को हर्षित करने वाली वाणी इनके मुख से उच्चरित हुई है। **-(शेष अगले अंक में)**

वेद जनसामान्य से दूर क्यों ?

लेखकः कृपालसिंह वर्मा, डी–575, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद (उ0 प्र0) 9927887788

वेद विज्ञान की पुस्तक है, लेकिन कोई भी विद्यार्थी विज्ञान के लिए वेद नहीं पढ़ता। वैदिक विज्ञान उनकी समझ में नहीं आता। क्योंकि वैदिक विज्ञान वैदिक शब्दावली में ही अभिव्यक्त किया गया है। यदि वैदिक विज्ञान को आधुनिक विज्ञान की शब्दावली में प्रकट किया जाये तो सामान्य बुद्धि का विद्यार्थी भी वैदिक विज्ञान को आसानी से समझ सकता है।

वैदिक विज्ञान के अनुसार प्रकृति में 33 दिव्य शक्तियाँ हैं। वे हैं–आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति।

आठ वसु– (1) अग्नि, (2) पृथिवी, (3) वायु, (4) अन्तरिक्ष, (5) सूर्य, (6) द्यौ, (7) चन्द्रमा (8) नक्षत्र।

उपरोक्त आठ वसु में से यदि एक भी निकाल दिया जाये तो पृथ्वी पर जीवन समाप्त हो जायेगा। इसलिए इनको बसाने वाले अर्थात् वसु कहते हैं।

ग्यारह रुद्र– (1) प्राण, (2) अपान, (3) व्यान, (4) उदान, (5) समान, (6) नाग, (7) कूर्म, (8) कृक्कल, (9) देवदत, (10) धनंजय, (11) आत्मा।

इनके शरीर से निकल जाने पर सब रोते हैं। इसलिए इन्हें रुद्र कहते हैं।

बारह आदित्य– वर्ष के 12 मास आदित्य सूर्य के प्रकाश को कहते हैं। प्रत्येक मास में सूर्य प्रकाश के गुण अलग होते हैं। इसलिए इसको बारह भागों में विभक्त किया है।

इन्द्र– विद्युत को इन्द्र कहते हैं।

प्रजापति– संवत्सर को कहते हैं। एक वर्ष में ऋतुओं का चक्र पूरा हो जाता है इसलिए वर्ष को ही संवत्सर कहते हैं।

तापक्रम बढ़ाने की क्रिया को प्राण कहते हैं। तापक्रम घटाने की क्रिया को अपान कहते हैं। तापक्रम सम करने की क्रिया को समान कहते हैं। परिणामी तापक्रम को उदान कहते हैं। जिस ताप से कार्य किया जाता है, उसे व्यान कहते हैं।

सूर्य पृथ्वी के ताप को बढ़ाता है जबकि जल, रात्रि, वृक्ष आदि ताप कम करते हैं फिर भी पृथ्वी पर ताप बना ही रहता है। यही उदान है।

इसी प्रकार ताप बढ़ाने वाली शक्ति को मित्र कहते हैं जैसे सूर्य ताप घटाने वाली शक्ति को वरुण कहते हैं। जैसे जल।

प्रकृति में कुछ जोड़े हैं जो उत्पत्ति का कार्य करते हैं।

द्यौ तथा पृथ्वी (Energy and Matter)

अन्धकार तथा प्रकाश (Darkness and Light)

दिन तथा रात (Day and Night)

अग्नि तथा जल (Heat and water)

मित्र तथा वरुण (Positive charge and Nagative charge)

ऐसे अनेक मिथुन हैं। इन्हें वैदिक विज्ञान की भाषा में अश्विनौ कहते हैं। ये दो बहुत महत्वपूर्ण देवता हैं। सारा Machanism अर्थात् यन्त्रविज्ञान इन्हीं पर आधारित है।

जब किसी तार में विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है तो तार के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र (Magnetic Field) उत्पन्न हो जाता है। चुम्बक के चारों ओर भी चुम्बकीय क्षेत्र होता है। इसे ही वैदिक विज्ञान की भाषा में मरुत् कहते हैं।

जिस ध्वनि को वायु वहन करती है उसे इड़ा कहते हैं। जिस ध्वनि को विद्युत धारा वहन करती है उसे सरस्वती कहते हैं तथा जिस ध्वनि को विद्युत चुम्बकीय तरंगें वहन करती हैं। उसे भारती कहते हैं।

वैदिक विज्ञान ने ब्रह्माण्ड को तीन भागों में विभक्त कर दिया है।

(1) पृथिवी लोक– इसकी दिव्य शक्ति अग्नि है।

(2) अन्तरिक्ष लोक– इसकी दिव्य शक्ति वायु है।

(3) द्यौ लोक– इसकी दिव्य शक्ति सूर्य है।

सूर्य से उत्पन्न अग्नि नीचे की ओर चलती है।

पृथ्वी पर उत्पन्न अग्नि ऊपर की ओर चलती है।

अन्तरिक्ष में वायु तिरछी चलती है।

सोम देवता– शक्ति के उद्‌गम को सोम कहते हैं। ईंधन से अग्नि उत्पन्न होती है इसलिए यह सोम है। अन्न से शरीर को शक्ति मिलती है। अन्न सोम है। वायु से अग्नि उत्पन्न होती है, वायु सोम है। विद्युत आवेश से विद्युतधारा बनती है। इसलिए विद्युत आवेश सोम है। प्राणों से वायु, वायु से अग्नि बनती है इसलिए प्राण सोम है। वैदिक विज्ञान में विद्युत को अग्नि तत्व के अन्तर्गत ही माना गया है।

यज्ञ– किसी भी वैज्ञानिक उपक्रम को यज्ञ कहते हैं। यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं।

(1) **आध्यात्मिक यज्ञ–** परमात्मा के साक्षात्कार के लिए जो उपासना की जाती है वह आध्यात्मिक यज्ञ है।

(2) **आधिभौतिक यज्ञ–** राज्य तथा समाज को व्यवस्थित करने की क्रिया को आधिभौतिक यज्ञ कहते हैं। जैसे राजसूय यज्ञ अथवा संवैधानिक व्यवस्था।

(3) **आधिदैविक यज्ञ–** प्रकृति की दिव्यशक्तियों के द्वारा जीवन को सुखी बनाने के लिए जो वैज्ञानिक उपक्रम किये जाते हैं उसे आधिदैविक यज्ञ कहते हैं। ये दिव्य शक्तियां हैं अग्नि, विद्युत तथा सूर्य।

अश्वमेध यज्ञ में शस्त्रों का निर्माण होता था। विद्युत तथा अग्नि की शक्तियों से उद्योगों का चलाना। आधिभौतिक यज्ञ होता है।

असुर तथा देवता– देवता उसको कहते हैं कि जिसके लिए आहुति दी जाती है। जैसे आदित्य देवता। आदित्य प्रकाश को कहते हैं। प्रकाश करने के लिए दीपक में तेल की आहुति देना आवश्यक है। परन्तु अन्धेरा करने के लिए कोई आहुति देने की आवश्यकता नहीं है। अन्धेरा अपने आप हो जाता है। आदित्य देवता है जबकि अन्धकार असुर है। इसी प्रकार दिन देवता है जबकि रात्रि असुर है। ये दोनों ही प्रजापति अर्थात् सृष्टि की सन्तान हैं।

वेदी– जिसके आधार पर आहुति का उपयोग होता है उसे वेदी कहते हैं प्रकाश करने के लिए दीपकरुपी वेदी की आवश्यकता है। पैट्रोल से शक्ति प्राप्त करने के लिए इंजनरूपी वेदी की आवश्यकता है। शरीररूपी वेदी को चलाने के लिए अन्न की आहुति की आवश्यकता है।

वेदों में तीन प्रकार की विद्या है।

(1) आध्यात्मिक विद्या (2) आधिभौतिक विद्या (3) आधिदैविक विद्या।

(1) आध्यात्मिक विद्या में परमात्मा तथा आत्मा के स्वरूप की व्याख्या होती है। उपनिषद ग्रन्थ वेद मंत्रों की आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं।

(2) आधिभौतिक विद्या में राज्य व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था के स्वरूप की व्याख्या होती है। स्मृति ग्रन्थों में वेद मंत्रों की आधिभौतिक व्याख्या मिलती है।

(3) आधिदैविक विद्या में प्रकृति की दिव्य शक्तियों की व्याख्या होती है। ये दिव्य शक्तियां हैं– अग्नि, वायु, तथा सूर्य। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद मंत्रों की वैज्ञानिक व्याख्या मिलती है।

अग्नि शब्द का आध्यात्मिक अर्थ है परमात्मा।

अग्नि शब्द का आधिभौतिक अर्थ है राजा।

अग्नि शब्द का आधिदैविक अर्थ है भौतिक अग्नि।

वैदिक विज्ञान के पांच तत्व– (1) पृथिवी (2) जल (3) अग्नि (4) वायु (5) आकाश।

(1) पृथिवी का गुण है गन्ध, नासिका से ग्रहण।

(2) जल का गुण है रस, रसना से ग्रहण।

(3) अग्नि का गुण है रूप, चक्षु से ग्रहण।

(4) वायु का गुण है शब्द, श्रोत्र से ग्रहण।

प्रत्येक तत्व में अपने से बाद वाले तत्व के गुण भी होते हैं।

पृथिवी– गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द।

जल– रस, रूप, स्पर्श, शब्द।

अग्नि– रूप, स्पर्श, शब्द।

वायु– स्पर्श, शब्द।

आकाश– शब्द।

(1) पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी गन्धयुक्त पदार्थ पृथिवी तत्व के अन्तर्गत आते हैं।

(2) जल एक आश्चर्यजनक पदार्थ है। सामान्य तापक्रम तथा दाब पर यह द्रव अवस्था में पाया जाता है। यह गन्धहीन होता है। इसमें स्नेह का गुण होता है। यह आटे की लोई तथा मिट्टी का पिण्ड बना सकता है जिससे बर्तन बनते हैं। शीतलता इसका स्वभाविक गुण है।

वायु– यह सामान्य तापक्रम एवं दाब पर अदृश्य अवस्था में पाया जाता है। यह गन्धहीन होता है। वायु गन्धहीन होने पर भी जल तत्व के अन्तर्गत नहीं आती क्योंकि यह सामान्य ताप एवं दाब पर द्रव अवस्था में नहीं होता।

अग्नि– क्रम में वायु से पहला तत्व है। यह चक्षु ग्राह्य होता है। इसमें स्पर्श तथा शब्द का गुण भी होता है।

आकाश– आकाश का गुण शब्द होता है। शंख के अन्दर विशेष प्रकार की खाली जगह होती है। यही शब्द उत्पन्न करने का कारण है।

विशेष- पृथ्वी में पाई जाने वाली धातु जैसे लोहा, तांबा, सोना आदि गन्धहीन होने के कारण पृथिवी तत्व के अन्तर्गत नहीं आते। सामान्य तापक्रम एवं दाब पर द्रव अवस्था में न पाये जाने के कारण जल तत्व के अन्तर्गत नहीं आते। इनमें रूप, स्पर्श तथा शब्द का गुण पाया जाता है। ये तीनों गुण अग्नि तत्व के हैं। इसलिए इन्हें अग्नि तत्व के अन्तर्गत रखा गया है। वैदिक विज्ञान इनको Soliditied Heat मानता है। विशेष युक्तियों से इनको Heat में Converted किया जा सकता है।

वेदों को लोकप्रिय बनाने का केवल एक ही मार्ग है और वह है वैदिक विज्ञान को आधुनिक विज्ञान की भाषा में अभिव्यक्त करना। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

श्यामाप्रसाद मुखर्जी	8 जुलाई
मंगल पाण्डे	19 जुलाई
चन्द्रशेखर आजाद	23 जुलाई
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	29 जुलाई
मुंशी प्रेमचन्द	31 जुलाई

19 जुलाई	गुरू पूर्णिमा
26 जुलाई	कारगिल युद्ध
28 जुलाई	वन महोत्सव दिवस

महापुरुषों की पुण्यतिथि

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन	1 जुलाई
स्वामी विवेकानन्द	4 जुलाई
भाई महाराजसिंह	5 जुलाई

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

सफलता का दूसरा साधन
"निःस्वार्थ आत्मत्याग"

लेखकः–केदारनाथ गुप्त

एक बार तालाब और नदी के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। तालाब ने नदी से कहा, "नदी, तुम बड़ी मूर्ख हो, अपना पानी और सारा माल असबाब समुद्र को क्यों दे देती हो? मुझे देखो। मैं तुम्हारे दिये हुये पानी और माल असबाब को उसे नहीं देता। समुद्र बड़ा कृतघ्नी है। उसे किसी बात की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम अपनी एकत्रित संपत्ति को समुद्र में डालती चली गई तो भी वह उतना ही खारा रहेगा जितना इस समय है। उस की कड़ुआहट दूर हीं होने की। बहिन, भैंस के सामने बीन बाजा बजाना उचित नहीं है। मेरा कहा मानो और माल असबाब अपने पास रक्खो।" देखिये यह सांसारिक लोगों की बुद्धिमत्ता है। नदी से कहा गया कि अन्तिम फल और आगामी आपत्तियों का ध्यान रक्खो। नदी वैदिक धर्म के मानने वाली थी। उसने तालाब की युक्तिपूर्ण बातों को सुनकर उत्तर दिया, "कि नहीं (मेरे प्यारे भाई) आपत्तियों और फल से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। हार जीत से मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं। काम मुझे प्यारा है। अपना कर्त्तव्य समझकर करूँगी। मेरा जीवात्मा स्वयं कार्य की मूर्त्ति है। इसलिये में काम बन्द कभी भी न करूँगी।" नदी ने अपना काम नहीं छोड़ा, लाखों गैलन पानी समुद्र में डालती चली गई। कंजूस तालाब तीन चार महीने में सूख गया, उसमें कीचड़ ही कीचड़ हो गया और उसके गन्दे पानी से दुर्गन्धि आने लगी किन्तु नदी ज्यों कि त्यों साफ और कान्तिमय बनी रही। उसका श्रोत नहीं सूखा। धीरे–धीरे पानी समुद्र से उड़–उड़कर चश्मों में जाने लगा। मानसून और तिजारती हवाओं ने भी चुपके चुपके अदृश्य रूप से समुद्र का पानी ले जाकर नदी के उद्‌गम स्थान को सदा के लिये जल से तराबोर कर दिया।

वेदान्त कहता है कि आप लोग तालाब की संकुचित नीति का अनुसरण न करें। मेरा क्या होगा, मेरे काम का फल मुझे क्या मिलेगा इस बात की चिन्ता स्वार्थी छोटे तालाब ही को रहती है। आप काम कीजिये किन्तु निष्काम रूप से। काम करना अपना जीवनोद्‌देश्य बनाइये। वेदान्त की इस शिक्षा पर चलने से आपको दुखदाई वासनाओं से छुट्टी मिल जायगी। इस बात की कुछ परवाह ही न कीजिये कि हमारे काम का क्या फल होगा, लोग हमें कुछ देंगे कि नहीं, वे हमारे काम से प्रसन्न होंगे या कड़ी–2 आलोचनायें करेंगे। कुछ नहीं तुम्हें तो बेचैन करने वाली वासनाओं से पिंड छोड़ना है काम से नहीं। सब प्रकार के कष्टप्रद मनोविकार और प्रलोभनों से बचने के लिये काम ही सब से बढ़िया और गुणकारी औषधि है। सच्चा आनन्द उसी समय मिलेगा जब आप सच्चे काम में लगकर इस सूक्ष्म शरीर को भूल जाइयेगा। पवित्र निर्दोषी बनने और परमात्मा तक पहुंचने की यही कुंजी है। इस प्रकार की प्रसन्नता उच्च

कोटि की होगी और काम के बदले पुरष्कार रूप में आपको वह अवश्य मिलेगी। हृदय को स्वार्थपूर्ण कामों में लगाकर इस स्वर्गीय अनुपम आनन्द को नष्ट न करो। कुत्सित इच्छाओं और द्रव्य के प्रलोभनों से आपकी बढ़ती होने की अपेक्षा घटती ही होती जायेगी और आपके परिश्रम को सिवाय हानि पहुंचने के लाभ नहीं पहुंचेगा। काम समाप्त होने के पश्चात् जो आनन्द मिलता है। वैसा सुन्दर और अनुपम आनन्द न तो किसी प्रतिफल के मिलने से और न अपनी प्रशंसा सुनने से ही मिल सकता है। अत: काम को त्याग और धर्म की दृष्टि से करो। व्यर्थ उसके तुच्छ फल की ओर घसिट कर न चले जाओ। जिम्मेदारी की परवाह न करो। प्रतिफल पाने की इच्छा छोड़ ही दो। यही अपना लक्ष्य बनाओ। लोग कहते हैं, जो पत्थर दीवार में लगाये जाने योग्य हैं वह रास्ते में पड़ा हुआ कभी नहीं मिल सकता। यदि तुम परमात्मा के अटल नियम द्वारा अपने में योग्यता उत्पन्न करो तो प्रत्येक वस्तु आप से आप दौड़ी चली आवेगी। जलता हुआ लैम्प पांखियों को बुलाने नहीं जाता, पांखियां स्वयं लैम्प के चारों ओर इकट्ठी होती हैं। साफ पानी का सोता मनुष्यों की कुछ भी परवाह नहीं करता किन्तु वे स्वयं उसके पास जाकर पीते हैं। चन्द्रमा के उदय होते ही लोग चांदनी का आनन्द आपसे आप लेने लगते हैं, चन्द्रमा को कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। काम पर डटे रहो जब तक कि आपको शरीर की अनित्यता और आत्मा की महानता का ज्ञान न हो जाय। इस प्रकार कठिन परिश्रम करने का अभ्यास जब पड़ जायगा तो निर्वाण और कैवल्य के आनन्द का अनुभव आप स्वयं करने लगेंगे। परिश्रम की शूली पर शरीर को लटका दोगे तो सफलता आप से आप पीछे दौड़ी चली आवेगी और प्रशंसा करने वालों की कमी न रहेगी। ईसामसीह जब तक जीवित था तब तक उसका सत्कार नहीं हुआ। जब सूली पर लटका दिया गया तो उसकी पूजा होने लगी। पृथ्वी के भीतर गड़ी हुई सच्चाई एक न एक दिन अवश्य निकलती है। बीज जब तक सड़े नहीं और न उसके रूप में परिवर्तन हो तब तक न तो वह उगही सकता है और न उसमें दाने ही लग सकते हैं। अत: सफलता का दूसरा साधन 'आत्म त्याग' है। सूक्ष्म शरीर का बलिदान करना ही वास्तविक त्याग है। त्याग का दूसरा अर्थ नहीं और कुछ न समझ बैठना। त्याग का अर्थ वैराग नहीं है।

प्रत्येक पुरुष सफेद (गोरा) और कान्तिमय होना चाहता है। तुम यशस्वी क्योंकर हो सकते हो। सफेद पदार्थ की तरफ देखो। वे सफेद क्यों हैं; उनमें सफेदी कहाँ से आई। विज्ञान बतलादेगा कि सफेदी का और कोई दूसरा कारण नहीं है, केवल त्याग है। सूर्य के सात रंग सब पदार्थों पर पड़ते हैं। कुछ पदार्थ सब रंग सोख लेते हैं केवल एक रंग बाहर फेंकते हैं। ऐसे पदार्थों की पहिचान उसी रंग से होती है। तुम गुलाब को गुलाबी रंग का कह सकते हो किन्तु वह रंग गुलाब का नहीं है। कैसे अचम्भे की बात है कि जो रंग उसने सोख लिया है उसका कुछ हिसाब ही नहीं लगाया जाता। काले पदार्थ सूर्य से रंग खींचकर सोख लेते हैं। बाहर कोई रंग नहीं फेंकते। उनमें त्याग की मात्रा नहीं है। यही कारण है कि वे काले देख पड़ते हैं। सफेद पदार्थ सब रंग त्याग देते हैं कोई रंग नहीं सोखते। वे कहते हैं हमारी कोई वस्तु नहीं है, हम किसी पर स्वार्थपूर्ण अधिकार नहीं करना चाहते। उनमें स्वामित्व का भाव नहीं है। इसीलिये वे सफेद और

कान्तिमय बने रहते हैं।

उसी प्रकार यदि आप उन्नति करना चाहते हैं, यदि आपकी इच्छा है कि हमारी कीर्ति फैले तो आपको स्वामित्व का भाव हृदय से निकाल कर फेंक देना पड़ेगा। ऐसा करने की आवश्यकता है। दान दीजिये, स्वतन्त्रता पूर्वक काम कीजिये किन्तु अपना हाथ किसी के सामने गिड़गिड़ा कर न फैलाइये। प्रत्येक वस्तु को अपनी बनाने की आदत छोड़िये। हवा सबकी समान संपत्ति है। तब जो हवा आपके फेफड़ों में है उसे आप अपनी क्यों बनाते हैं। जब आपका ध्यान फेफड़े वाली हवा से हट जाता है तो आप कहने लगते हैं अहा यह सारा वायुमंडल हमारा है, हमारे सामने हवा का ढेर का ढेर लगा हुआ है, इसी को सांस लेने के काम में लाना चाहिये। इसलिये घमण्ड में चूर होकर स्वप्न में भी न ख्याल करो कि यह वस्तु हमारी है। प्रत्येक वस्तु उस ईश्वर की है। जगदात्मा की है। सर आइजक न्यूटन का उदाहरण लीजिये। क्या बात है कि जनता उसको इतना बुद्धिमान और यशस्वी समझती है। जिस समय वह मृत्युशैया पर लेटा हुआ था उस समय उसके भावों का पता चला। लोगों ने उसकी प्रशंसा की और कहा कि आप दुनियाँ में सबसे बड़े हैं। उसने उत्तर दिया नहीं! मेरी बुद्धि तो एक बालक की तरह ज्ञान के विस्तीर्ण समुद्र के किनारे कंकड़ के रोड़े बिन रही थी। न्यूटन अभी तक रोड़े बिनता हुआ बिछौने पर लेटा हुआ था। अतः हम देखते हैं कि वही मनुष्य तन मय होकर सारी शक्तियों के साथ काम कर सक्ता है जिसमें घमंड की मात्रा नहीं है और जो अपनी बड़ाई के लिये नहीं मरता। वेदान्त का यही सार है।

तुम्हारे मन में बहुत सी इच्छायें भरी हैं। मैं तुम्हें बतलाता हूं कि उनकी पूर्ति किस प्रकार हो सकती है? आपने कमरे के किसी रोशनदान के पल्ले (छोटी खिड़की) को देखा है? यदि देखा है तो बतलाइये उसकी साया ऊपर किस प्रकार उठाई जा सकती है। पल्ले को डोरी द्वारा नीचे खींच लीजिये। साया ऊपर आपसे आप उठ जायगी। उसी प्रकार जब इच्छाओं से आप मुख मोड़ लेंगे तभी उनकी पूर्ति स्वयं हो जायगी। धनुष को आप चाहे जितना फैलाइये बाण अपना स्थान नहीं छोड़ेगा। जब आप बाण को छोड़ देंगे तभी वह शत्रु के हृदय को बींधेगा। उसी प्रकार जब आप इच्छाओं से हाथ खींच लेंगे तभी वे दूसरों के हृदय में टक्कर मारेगी और तभी उनकी पूर्ति होगी। वेदान्त पुकार पुकारकर कहता है कि आप अपना पराया छोड़कर परमात्मा के रंग में रंग जाइये, सफलता आपको आपसे आप मिल जायगी।

दो संन्यासी साथ-2 यात्रा कर रहे थे। उनमें से एक तो सदैव अपने पास द्रव्य रखता था और दूसरा त्यागी था। उन्होंने वाद-विवाद करना प्रारम्भ किया कि मनुष्य को द्रव्य रखना चाहिये या नहीं। होते हवाते वे एक नदी के किनारे पहुंचे। सायंकाल हो गई थी। त्यागी मनुष्य के पास एक टका भी न था किन्तु दूसरे के पास बहुत से रुपये थे। त्यागी ने कहा, ''हम शरीर की कुछ भी परवाह नहीं करते; यदि हमारे पास पैसे नहीं है तो क्या, हम ईश्वर का गुणानुवाद करके इसी किनारे पर रात को बिता सकते हैं।'' पैसे वाले संन्यासी ने उत्तर दिया, ''भाई, यहां न तो कोई गांव है, न झोपड़ा है, न कोई मनुष्य है, सांप डंस लेंगे अथवा ठंड से चिमुड़ जायंगे, मेरे पास पैसे है चलो मल्लाह को कुछ दे दिवाकर उस पार गांव में चले चलें,

वहां रात बड़े आराम से कटेगी।'' अंततः वे नाव में बैठकर उस पार चले गये। रात्रि के समय पैसे वाले संन्यासी ने त्यागी संन्यासी को बहुत खोटी खरी सुनाकर कहा ''क्यों, अब तुम्हें द्रव्य के लाभ मालुम हुये; देखो पैसे होने से दो की जान बच गई। यदि मैं तुम्हारी तरह त्याग ही का अवलंब लेता तो या तो हम लोग भूखों मरते, ठिठुर जाते अथवा मारे जाते।'' त्यागी ने कहा, ''भाई त्याग ही से तो इस पार सुरक्षित पहुंचे। यदि पैसे जेब में भरे रहते और मल्लाह को न देते तो उसी पार पड़े रहते। इसके सिवाय तुम्हारे पाकट को मैं अपना पाकट समझता था। मैंने सोचा कि मेरे पास पैसे हैं न मेरे पाकट में सही आप ही के पाकट में सही। ऐसे-2 विचारों से मुझे पैसों का कष्ट नहीं होता। जब किसी बात की आवश्यकता होती है तो वह आप से आप मिल जाया करती है।'' इस कहानी से इस बात की शिक्षा मिलती है कि जब तक आप अपनी इच्छाओं को अपने साथ रक्खेंगे तब तक न तो आपकी कुशल है और न आपको शांति ही मिल सकती है। इच्छाओं को छोड़ दो, आपको दुगनी शांति मिलेगी सुख मिलेगा और आपकी इच्छाओं की भी पूर्ति हो जायगी। स्मरण रहे आपकी इच्छायें तभी पूर्ण होंगी जब आप उनसे हाथ खींच कर अपना ध्यान ब्रह्मचिन्तन में लगायेंगे। इस प्रकार ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से जिस समय आप परमात्मा में निमग्न हो जायंगे उस समय आपके इच्छाओं की पूर्ति में कुछ भी देर न लगेगी। ❁❁❁

तपोभूमि मासिक के ग्राहक महानुभावों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F SC Code- I O B A 0001441 ***'सत्य प्रकाशन'*** *खाता संख्या- 14410100000 2341*

दो आँसू

रचयिता- कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर

जिन्हें संसार में संसार का उपकार करना था।
जिन्हें दुनिया में वैदिक धर्म का विस्तार करना था।
अनाथों और अछूतों का जिन्हें उद्धार करना था,
जिन्हें निज देश और जाति का बेड़ा पार करना था।
उन्हें देखो कि बाहम बरसरे पैकार बैठे हैं,
समाजों को मिटाने के लिए तैयार बैठे हैं॥ 1॥

सभाओं में जो सदा संघटन के गीत गाते हैं,
बड़े सरमन सुनाते हैं, बड़ी बातें बनाते हैं।
खुदाई का जो खुद को बेगरज खदिम बताते हैं,
जो उनके दिल टटोलो तो खुदी में स्याह पाते हैं।
यही लीडर रहें तो हो चुका प्रचार वेदों का,
इन्हें तो खून करना है दयानन्द की उमीदों का॥ 2॥

जमाना रश्क करता था कभी वो प्यार था हम में,
हर इक एक-दूसरे मूनिसों गमख्वार था हम में।
धर्म पर जान देने को हर इक तैयार था हम में,
बला का जोश था और जज्बये ईसार था हम में।
मगर अब आर्यों के नाम को उल्फत नहीं मिलती,
ना वो श्रद्धा, न वो भक्ति है वो हिम्मत नहीं मिलती॥ 3॥

निकलते थे जो हम शानों पै वेदों के अलम रखकर,
फरिश्ते भी फिदा होते थे उस पुरजोर मंजर पर।
जला देते थे हम दुश्मन के खिरमन को कलम रखकर,
हटाते ही न थे पीछे कभी आगे कदम रखकर।
नमस्ते लब पै आते ही मुखालिफ चौंक पड़ते थे,
''समाजी'' नाम से पाखंडियों के होश उड़ते थे॥ 4॥

-शेष पृष्ठ संख्या 33 पर

"ऋषिवर देव दयानन्द की राष्ट्र को देन"

लेखकः खुशहालचन्द्र आर्य, 180, महात्मा गांधी रोड. (दो तल्ला) कोलकाता मोबा 9830135794

ऋषिवर देव दयानन्द से पहले आदि शंकराचार्य व बल्लभाचार्य से लेकर आधुनिक आचार्य करपात्री तक जितने भी आचार्य हुये हैं, उनमें बुद्ध, कबीर, नानक, ईसा, मोहम्मद आदि भी आ जाते हैं, इन्होंने केवल अपने ही मत पंथ, सम्प्रदाय का प्रचार किया। अपने ही मतावलम्बियों का हित चाहा और उन्हीं को बढ़ावा दिया। राष्ट्र चिन्तन, राष्ट्र प्रेम व राष्ट्रहित के सम्बन्ध में किसी ने दो शब्द भी नहीं कहे। भारत के इतिहास में केवल देव दयानन्द ही एक ऐसे धर्माचार्य, संन्यासी, बालब्रह्मचारी व वेदों के प्रकाण्ड विद्वान हुए हैं, जिन्होंने अपने वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रहित के कार्य करने की बात कही है। केवल महर्षि ने ही देश के प्रति समर्पित होने की प्रेरणा दी है। वैसे तो महर्षि दयानन्द ने सर्वांगीण विकास की बात कही है, चाहे वह धार्मिक हो, शारीरिक हो, आत्मिक हो, सामाजिक हो व राजनैतिक हो, सभी विषयों में अपनी कलम चलाई है पर देशहित पर विशेष जोर दिया है। वे कार्य इसी भाँति हैं।

1– <u>स्वतन्त्रता के प्रथम उद्घोष कर्त्ता:–</u> महर्षि दयानन्द सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति का उद्घोष किया। उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि अपना राज्य चाहे कितना भी बुरा क्यों न हो, तब भी वह विदेशी राज्य से कहीं अधिक अच्छा होता है। इसी को पढ़कर बाल गंगाधर तिलक ने कहा कि "आजादी लेना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" और राम प्रसाद बिस्मिल, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद तथा रोशनसिंह आदि क्रान्तिकारियों ने जो आर्यसमाजी विचारों के थे उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अपना जीवन न्यौछाबर कर दिया और हँसते-2 फाँसी के फन्दे को चूमा। वीर सावरकर, भाई परमानन्द, लाला हरदयाल, लाला लाजपत राय ने अपने जीवन का एक-एक पल व एक-एक श्वांस देश को स्वतन्त्र करने के लिए समर्पित कर दिया इसी कारण यह कहना उचित ही है कि भारत को स्वतन्त्रता दिलाने में सबसे अधिक भाग आर्य समाजियों ने लिया। इसीलिए पट्टाभि सीतारमैय जो काँग्रेसी थे, उसने काँग्रेस का इतिहास लिखा है, उसने स्वीकार किया है कि आजादी की लड़ाई में 85 प्रतिशत आर्य समाजी ही थे। इसी प्रकार स्वामी जी के उद्घोष से देश में नवक्रान्ति आई जिससे देश 1947 के 15 अगस्त को स्वतन्त्र हुआ। इस आजादी पाने का सबसे अधिक श्रेय महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज को जाता है।

2– <u>नारी उत्थान:–</u> महर्षि के आने से पहले देश में नारी जाति की बड़ी शोचनीय दशा थी। उनको घर की चार दीवारी के भीतर अपमानित होकर सहना पड़ता था। उनको पढ़ने तथा घूमने-फिरने का कोई अधिकार नहीं था। घर में जब लड़का पैदा होता था तो घर में थाली बजाकर खुशी मनाई जाती थी और

जब लड़की पैदा होती थी तो पूरे घर में उदासी छा जाती थी। महर्षि दयानन्द ने नारी जाति को पुरुष के समानाधिकार दिलाया और उसको पढ़ने–पढ़ाने का भी अधिकार दिलाया। महर्षि ने कहा कि स्त्री–पुरुष गृहस्थरूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। यह दोनों समान होने चाहिए तभी गाड़ी ठीक चलेगी नहीं तो गृहस्थ में लड़ाई–झगड़ा रहेगा और गृहस्थ दु:खी बना रहेगा। यह महर्षि जी की ही कृपा है, जो इन्दिरा गांधी नारी के साथ–साथ विधवा होते हुए भी भारत की प्रधानमंत्री बनी। ममता बनर्जी व जयललिता मुख्य मंत्री बनी हुई हैं और मुसलमानों में नारी पर और भी अधिक पाबन्दी है फिर भी महर्षि जी की जागृति से बेनजीर भुट्टो भी पाकिस्तान की प्रधानमंत्री बनी।

3– **अछूतोद्धार:–** महर्षि जी के आने से पहले नारी–जाति से कुछ कम या अधिक अपमानित जीवन अछूत (हरिजन) भाईयों का था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश उनकी परछाई से भी घृणा करते थे। यदि कोई हरिजन यानि अछूत बगल से भी निकल जाता था तो उसे पहले तो सौ गाली देते थे फिर स्नान करते थे तब उनको शान्ति मिलती थी। उनको पढ़ने का तथा पूजा–पाठ करने के लिए मन्दिर में प्रवेश होने का अधिकार नहीं था। उनका जीवन पूर्ण दु:खी व अपमानित था। जिसके कारण हमारे अछूत (शूद्र) भाई विदेशियों के लोभ, लालच व भय में आकर अपना हिन्दू धर्म छोड़कर मुसलमान व ईसाई बनने लगे। महर्षि ने जब अपने अछूत भाईयों की यह दशा देखी तो उनका हृदय रो पड़ा और उनको पढ़ने का तथा मन्दिरों में प्रवेश होने का अधिकार दिलाया। महर्षि ने कहा कि ईश्वर के सभी मनुष्य ही नहीं बल्कि प्राणी–मात्र ही पुत्र–पुत्रियों के समान हैं इसीलिए ईश्वर सबका माता व पिता है और हम सब परस्पर भाई–भाई हैं। इसलिए एक भाई से घृणा करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है। इसीलिए आज अछूतों को हर काम में बराबर का अधिकार है और अछूत बड़े से बड़े पद पर जाने का अधिकारी बन गया है। इसीलिए जगजीवन राम जो चमार जाति से थे वे भारत के उप–प्रधानमंत्री बने। मायावती जो नारी भी है और हरिजन भी है, वह उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनी। यह सब महर्षि जी की ही कृपा है।

4– **जाति जन्म से नहीं कर्म से होती है:–** प्राचीन काल में महाभारत तक जब विश्वभर में वैदिक धर्म ही था, तब हर आठ वर्ष का बच्चा या बच्ची को गुरुकुल में भेजना अनिवार्य था। जब ब्रह्मचारी पूर्ण विद्या पढ़कर गुरूकुल छोड़कर घर आने की तैयारी करता था तब गुरूकुल का आचार्य ब्रह्मचारी का समावर्त्तन संस्कार करके उसका वर्ण निर्धारित करता था, यानि गुण, कर्म, स्वभाव से वह ब्रह्मचारी, ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, वैश्य है, या शूद्र है उसी के अनुसार उसको वर्ण मिल जाता था और उसका विवाह भी उसी के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार उसी वर्ण की लड़की से करवा देता था और उसी वर्ण में रहते हुए वह अपना सुखी जीवन व्यतीत करता था। जब तक भारत में यह व्यवस्था बनी रही तब तक देश उन्नत व सम्पन्न बना रहा और विश्व का गुरू बना रहा। महाभारत के विकराल युद्ध के बाद सभी विद्वान, आचार्य, योद्धा, नीतिवान समाप्त हो गये और स्वार्थी, अनपढ़, ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए गुण, कर्म, स्वभाव को छोड़ जन्म से जाति मानने लगे तभी से देश पतित होना आरम्भ हो गया। महर्षि दयानन्द ने इस बात को समझ

लिया और वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुऐ गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण स्थापित होने पर जोर दिया जिससे अब कुछ सुधार होता दिखाई दे रहा है।

5– अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड पर कड़ा प्रहार:– महाभारत से एक हजार वर्ष पूर्व से वेद ज्ञान का ह्रास होने लगा था, पूरे देश में अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड के पैर जमने लगे थे। महाभारत के भीषण युद्ध में विश्व के सभी विद्वान, आचार्य, योद्धा तथा वीर पुरुष समाप्त हो गये थे। और स्वार्थी, अज्ञानी लोगों का प्रभुत्व हो गया था जिससे देश में अनेक मत-मतान्तर फैल गये और अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड का बोल-बाला हो गया। भूत-प्रेत, गण्डा-डोरी, फलित ज्योतिष, श्राद्ध-तर्पण, शगुन-अपशगुन आदि अनेक अन्धविश्वास व पाखण्ड कुछ कुरीतियाँ जैसे बाल-वृद्ध विवाह, सती प्रथा आदि चल पड़े जिससे देश पतन की ओर अग्रसर हो गया। साथ ही जैनियों की मूर्त्ति पूजा करने से जैन धर्म को बढ़ता देखकर हिन्दुओं ने भी राम व कृष्ण को अवतार घोषित करके उनकी पूजा करवानी आरम्भ कर दी जिससे हिन्दू जैन धर्म में जाने से तो रुक गये लेकिन मूर्त्ति-पूजा से हिन्दुओं को बड़ा नुकसान पहुँचा। सही ईश्वर उपासना जो स्तुतिप्रार्थनोपासना है उसको छोड़कर सभी मूर्त्ति पूजा में लग गये। मूर्तिपूजक चरित्र को गौण और मूर्ति-पूजा को मुख्य समझने लगे जिससे देश की चरित्र की हानि हुई और देश पतन की ओर बढ़ने लगा। जब महर्षि दयानन्द ने देश की यह पतित अवस्था देखी और यह समझ लिया कि यह स्थितिवेद-ज्ञान जो ईश्वरीय ज्ञान है उसके प्राय: लुप्त हो जाने से यह स्थिति बनी है। तब महर्षि ने अनेक दु:ख कष्ट व अभावों को सहकर अपने सच्चे गुरू स्वामी विरजानन्द की गोद में बैठकर करीब तीन साल तक वेद ज्ञान का अध्ययन किया और गुरू आज्ञा से ही वेद ज्ञान का प्रचार व प्रसार करने का व्रत लेकर वेदों का प्रचार किया जिससे देश में नव जागृति आई और हिन्दुओं में जो कुरीतियाँ कुप्रथायें, अन्धविश्वास व पाखण्ड था। उन पर कुछ अंशों में रोक लग गई जिससे देश वेद ज्ञान की ओर अग्रसर हुआ और उससे स्थिति में काफी सुधार आया।

–(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ संख्या 30 का शेष–

समाजों की मगर अब रात-दिन तहकीर होती है,
रवाँ गर्दन पै रोज अयगार की शमशीर होती है।
न वो तहरीर होती है, न वो तकरीर होती है,
जो होती है तो हर ईक बात बे-तीसीर होती है।
न वो लेखक रहे हम में न वो तक्कार है बाकी,
कि इस गुलशन के गुल मुरझा गये अब खार है बाकी॥ 5॥

❀❀❀

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2015 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2016 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे। **–व्यवस्थापक**

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

श्रीमद् भगवद् गीता (एक सरल चिन्तन)	प्रेस में
चार मित्रों की बातें	प्रेस में
गृहस्थ जीवन रहस्य	प्रेस में
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	प्रेस में
संन्ध्या रहस्य	प्रेस में
बालक जो महान बने	प्रेस में
चित्रमय दयानन्द	प्रेस में
श्रीमद् भगवद्गीता तत्व दर्शन	प्रेस में
शान्ता	प्रेस में

ऋग्वेद | ।। ओ३म् ।। | यजुर्वेद

श्री गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा

का

वार्षिक-उत्सव

दिनांक 18, 19 जुलाई 2016

धर्मानुरागी सज्जनो!

आपके अपने गुरुकुल श्री विरजानन्द आर्ष गुरुकुल, वेदमन्दिर, मथुरा का वार्षिक उत्सव आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी और पूर्णिमा तदनुसार दिनांक 18 और 19 जुलाई 2016 दिन सोमवार और मंगलवार (गुरुपूर्णिमा) को होना निश्चित हुआ है। यह पर्व श्री गुरु विरजानन्द जयन्ती के रूप में मनाया जाता है। नवीन ब्रह्मचारियों की प्रवेश दीक्षा के कार्यक्रम के साथ विद्वानों, उपदेशकों और संन्यासियों के प्रवचन का उत्तम सुयोग रहेगा।

अतः इस अवसर को हाथ से न जाने दें आप सपरिवार आयें। भोजन व्यवस्था गुरुकुल में ही दोनों दिन रहेगी। कार्यक्रम आप सबका ही है अतः इसकी सफलता का दायित्व भी मिलकर ही निभायें।

दिल प्रफुल्लित हो रहा है, आप की ही चाह में।
यह जानकर ही आप आयें, दोगुने उत्साह में।।
मेरे बिना बिगड़ेगा क्या? यह सोचकर रुकना नहीं।
हर कदम का मूल्य होता, जिन्दगी की राह में।।

निवेदकः

प्रधान	मंत्री	अधिष्ठाता
डॉ० सत्यप्रकाश अग्रवाल	**बृजभूषण अग्रवाल**	**आचार्य स्वदेश**

विशेषः गुरुकुल मसानी चौराहा पर स्थित है। गुरुकुल आने के लिए बस या ट्रेन से उतरने के बाद वहाँ से पूर्व की ओर आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग (कच्ची सड़क) पर मात्र 100 कदम चलकर गुरुकुल का मुख्य द्वार है।

सामवेद | अथर्ववेद

ऐसी विकट परिस्थिति में कालवा गुरूकुल से पूज्यपाद आचार्य बलदेवजी महाराज के यशस्वी शिष्य स्वामी रामदेव का अवतरण वैदिक संस्कृति के लिए वरदान सिद्ध हुआ। वे बड़ी चतुराई से स्वार्थी लोगों की आँखों में धूल झोंककर पुनः वैदिक संस्कृति के ध्वजवाहक बन गये। क्योंकि सारा संसार रोगों से त्रस्त था। स्वामी रामदेव जी महाराज ने आधुनिक संसाधनों का भरपूर उपयोग करके लोगों को विश्वास दिला दिया कि वैदिक संस्कृति ही सच्ची संस्कृति है वही आपका उद्धार करने में समर्थ है। कहावत है पहला सुख निरोगी काया स्वामीजी महाराज शारीरिक योग क्रियाओं को कराकर प्राण द्वारा उचित रोग निवारण कर संसार को दांतों तले उँगली दवाने का को बाध्य कर दिया, फिर क्या था? योग क्रिया के चमत्कार ने मजहब व जाति पाँति देशकाल स्थान की परतन्त्रता की जंजीरों को तोड़ डाला। सारा जन समुदाय स्वामी रामदेव के झण्डे के नीचे भेदभाव भुलाकर आने लगा। स्वार्थी लोगों ने इस अभियान को रोकने के लिए सत्ता का भी भरपूर प्रयोग किया उन्हें ठग, व्यापारी न जाने क्या-क्या कहा? पर यह ब्रह्मचारी, संन्यासी बिना किसी की परवाह किये बढ़ता रहा। जब वैदिक के मार्ग में सत्ता बाधा बनकर आई तो इन्होंने अपने दृढ़ उत्साह और अदम्य आत्मबल से सत्ता को भी उखाड़ फेंका। चारों ओर सारे विश्व में योग और रामदेव जी महाराज का डंका बज उठा। नई सत्ता की बागडोर भी एक तपस्वी और जुझारू व्यक्तित्व के हाथ में आई जौ वैदिक संस्कृति की महत्ता को समझता था जिसने भी अनेकों झंझावतों का सामना किया वे हैं श्री नरेन्द्र जी मोदी। स्वामी जी के बनाये वातावरण का माननीय मोदीजी ने पूरा लाभ उठाया और वैदिक संस्कृति के प्राण योग को विश्व पटल स्थापित कर दिया। निश्चित रूप भारत के गौरव को पुनः उन ऊँचाइयों तक ले जाने वाले स्वामी रामदेव और माननीय प्रधान मन्त्री नरेन्द्र जी मोदी सारे देश के लिए प्रणम्य हैं ऐसे सुपुत्रों भारत माता पुनः गौरवान्वित हुई, 21 जून को सारे विश्व को योगमय देखकर आनन्द का पारावार हर भारतीय के दिल में समा नहीं रहा था। जो कामना परतंत्रता के समय राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने की थी उसका साकार रूप देखकर आँखें आनन्दाश्रुओं से आप्यामित हो जाती हैं। गुप्त जी ने कहा था कि-

मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती।।

आज स्वामी रामदेव के तप-त्याग से गुप्त जी भारती भारतवर्ष में ही नहीं, सारे विश्व में गूंज रही है। इस अवसर पर सारे देश को बधाई देता हूँ। सभी देशवासियों से यही आग्रह करता हूँ कि वे इस दैवीय शक्ति से युक्त व्यक्तित्व स्वामी रामदेव जी के साथ दृढ़ता से खड़े रहें तभी हमारी ये पवित्र भावनायें भूमि पर साकार होंगी।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः

❁❁❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)	150.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
शंकर सर्वस्व	120.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	बाल मनुस्मृति	12.00
नारी सर्वस्व	60.00	ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)	40.00	महिला गीतांजलि (प्रेस में)	
विदुर नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
चाणक्य नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शान्ति कथा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
नित्य कर्म विधि	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग (प्रेस में)	25.00	गायत्री गौरव	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
भ्रांति दर्शन	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले (प्रेस में)	

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2016 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

सम्पादक
आर्य संदेश कार्यालय, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15 हनुमान रोड, नईदिल्ली-110001

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

...र, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600